महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे की मुखपत्रिका

समिति संवाद

पंजीकरण क्र. MAHHIN/2010/48645
अंक : 93 वाँ (संयुक्तांक)
वर्ष : 23 अगस्त-सितम्बर
मूल्य : ₹ 20/- वार्षिक : ₹ 200/-
पृष्ठ : 1 से 52

" स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है "

15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस

जय स्वतन्त्र भारत

जय स्वतन्त्र भारत, जय जननी
जय नव भारत हे, जय नवभारत हे
जय नवीन आकाश धरा नव
चंचल, अंचल हर्ष भरा भव
जय विमुक्त विहगों के कलरव
नव जीवनमय नव चेतनमय जय नव जाग्रत हे
जय जननी जय नव भारत हे ....

जय नवीन ऊषा नव चन्द्रा
नव सपनों की रजनी गन्धा
जय हिमाद्रि नव जय नव वृन्दा
जय नवीन रथ, जय नवीन पथ जय नवगतिरत हे
जय जननी जय नव भारत हे ....

जय नवस्वर की नवल गर्जना
जय नवस्वर की नवल सर्जना
जय नव शिव की नवल अर्चना
जय नव जनमत, जय नव पद शर जनमन उन्नत हे
जय जननी जय नव भारत हे....

– पं. सोहनलाल द्विवेदी

बोलो अभय हो आर्य वीरो

बोलो अभय हो आर्य वीरो आज वन्देमातरम्
जप तप यही है धर्म धीरो आज वन्देमातरम्

निज देश के जो क्लेश के संदेश पर सिर दे सके
देवेश कर सकता न उसकी दांज वन्देमातरम्

मरना अमिट है मर मिटो, मुड़ना नहीं रण से कभी
सर्वस्व देकर के बचा लो लाज वन्देमातरम्

जब तक न पहुंचो लक्ष्य पर आगे कदम रखते चलो
चलकर विचलना कायरों का काम वन्देमातरम्

विक्रम प्रकट क्रम से करो विभ्रम न हो भ्रम का बली
जिसमें भरा हो शौर्य उसका राज वन्देमातरम्

जिनके हृदय में दासता की वासना है बस गई
बेकाम उनके हैं सभी सुखसाज वन्देमातरम्

– रामचरित उपाध्याय

हिन्दी एक संगठित करनेवाली शक्ति है।
हिन्दी का प्रचार कार्य एक वाग्यज्ञ है।।
– काकासाहेब गाडगीळ

● वर्ष : 23 ● अगस्त–सितम्बर 2026 (संयुक्तांक)
● अंक : 93 वाँ ● मूल्य रु. 20/-
पंजीकरण क्र. : MAHHIN2010/48645

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे की मुखपत्रिका

समिति संवाद

✻ प्रधान संपादक ✻
ज. गं. फगरे

✻ संपादक ✻
डॉ. सुनील देवधर

✻ संपादकीय पता ✻
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
हिंदी भवन, 1439, शुक्रवार पेठ,
बाजीराव रोड, शेवडे गली,
पुणे : 411 002 (महाराष्ट्र)
दूरध्वनि : 020–24453159
मोबाईल : 9421324396
ई–मेल : **samitisanvaad@gmail.com**
website - https://mrpspune.org/index

MAHATRSHTRA RASTRABHASA

● वार्षिक रु. २००/- ●

- इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। संपादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- समिति संवाद पत्रिका की मुद्रण–व्यवस्था के लिए डॉ. स्नेहसुधा कुलकर्णी और मुद्रण संशोधन हेतु डॉ. स्मिता दात्ये के आभारी हैं।
- आवरण पृष्ठ – अनिता दुबे

मुद्रक- प्रकाशक : जयराम गंगाधर फगरे द्वारा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिए नीहारा प्रकाशन, 985 सदाशिव पेठ, पुणे 30 से मुद्रित करवाकर हिंदी भवन, 1439, शुक्रवार पेठ, बाजीराव रोड, शेवडे गली, पुणे 411002 (महाराष्ट्र) से प्रकाशित की गई। संपादक : जयराम गंगाधर फगरे.

Printed & Published by : J. G. Fagare on behalf of Maharashtra Rashtrabhasha Prachar Samiti & Printed at Palvi Mudranalaya, 985 Sadashiv Peth, Pune-30 and Published at 1439, Shukrawar Peth, Bajirao Road, Pune-2.
Editor : Jayram Gangadhar Fagare

अनुक्रम

संपादकीय

- लिपि के माध्यम से.... – ज. गं. फगरे 4
- संकल्प अभिनव भारत का – डॉ. सुनील देवधर 5

लेख

सन्दर्भ – स्वाधीनता दिवस

- आज़ादी – अर्थ और आयाम – सुमित पॉल 7,17
- भारत में लोकतंत्र – हिंसा एवं वैधता का संकट – डॉ. विजय कुमार लाल 8
- आज़ादी के अर्थ – डॉ. रेणु मिश्र 12

भाषा प्रसंग

सन्दर्भ – हिंदी दिवस

- गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान सन्दर्भ – सूर्यकांत नागर 13, 30
- उच्च शिक्षा में हिन्दी – दशा और दिशा – डॉ. मनोज श्रीवास्तव 14
- हिन्दी का अनूठा सफर – गरिमा मिश्र 16
- अपनत्व से भरी हिन्दी (संस्मरण) – जया आनंद 18
- पुणे में प्रथम हिन्दी प्रचारक – स्व. पं. ग. र. वैशंपायन – डॉ. सत्येन्द्र सिंह 20,27
- हिंदी और जन माध्यम – दिलीप कुमार 22

स्मरण

- लोकमाता अहिल्याबाई होळकर – संध्या टिकेकर 26
- महारानी अंवन्ती बाई लोधी – जयंती सिंह लोधी 28
- राष्ट्रीय स्वतंत्रता और आकाशवाणी @ 90 – अरुण कुमार पासवान 29
- शिक्षक दिवस – गुरु शिष्य विशिष्ट संबन्ध – रंजना दीक्षित 31, 47

कथालोक

- सीटी, सिग्नल और नियति – गौरव रघुवंशी 33
- लघुकथा – 1) ज़रुरतें, 2) रॉंग साइड – रेखा सक्सेना 37

अनुवाद

- मूल मराठी कविता – खरा धर्म – साने गुरुजी 38
  हिन्दी अनुवाद – सच्चा धर्म – पं. रामेश्वर दयाल दुबे

कविता/गीत/ग़ज़ल

- दोहे – वनज कुमार वनज 39
- कविता – डॉ. चंद्रिका प्रसाद दीक्षित, ललित 40
  1) वीरांगना अहिल्याबाई होलकर
  2) महाप्राण हिंदी कविता के
- गीत – डॉ. ज्योति कृष्ण 41
  1) अपनी सरहद, 2) सुनकर ललकार, 3) हिंदी रत्न 4) हमने हिन्दुस्तान पढ़ा है
- हिन्दी ग़ज़ल – प्रशान्त कात्यायन 42
  1) कभी ख़ुशबू, 2) जमाना है नया

चिंतन

- ज्ञान परम्परा में मूल्य चेतना – सुरेन्द्र अग्निहोत्री 43
- गणपति 45

पुस्तक चर्चा

- अविराम श्याम (एक विस्मृत क्रांतिकारी की कथा) ले. डॉ. किशोर सिन्हा, समीक्षक – विश्वमोहन 46

व्यंग्य

- हिन्दी के हमदम – सुभाष काबरा 48

● विशेष अनुरोध ●

समिति संवाद में प्रकाशनार्थ आपकी रचनाएँ युनिकोड में '**samitisanvaad@gmail.com**' इस ईमेल आयडी पर भेजें। आपकी प्रतिक्रियाओं और साहित्यिक गतिविधियों से सम्बन्धित समाचारों/रिपोर्ट्स का भी स्वागत है।

– संपादक

प्रधान संपादक की ओर से

लिपि के माध्यम से....

घटना सन 1917 की है, महात्मा गाँधी दक्षिण आफ्रीका से, पूर्ण रूप से सन 1915 में वापस आ चुके थे, और उनका पहला आन्दोलन चंपारण का था। जो चंपारण के गरीब किसानों पर अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ था। इस आन्दोलन ने गांधीजी को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रिम मोर्चे पर ला खड़ा किया था। सन 1917 में गुजरात राजनीतिक परिषद का सम्मेलन था। इस सम्मेलन में लोकमान्य तिलक जब भाषण देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अपनी बात अंग्रेजी में कहनी शुरू की। मंच पर महात्मा गांधी उपस्थित थे। उन्होंने तिलक जी से आदर के साथ अनुरोध किया और कहा, ''चूँकि यह एक भारतीय जन सभा है इसलिए आप अपनी बात हिन्दी या फिर अपनी मातृभाषा में भी रख सकते हैं और गांधीजी के इस अनुरोध का मान रखते हुए तिलक जी ने अपना भाषण मराठी के साथ ही टूटी फूटी हिन्दी में दिया। तिलक जी महाराष्ट्र में तो हमेशा मराठी में ही सम्बोधित करते थे। मराठी अखबार 'केसरी' का सम्पादन करते थे। अंग्रेजी में सम्बोधन, या तो काँग्रेस के राष्ट्रीय मंचों पर या अंग्रेजों के सामने ही वे अंग्रेजी में बोलते थे।हिन्दी के विषय में उन्होंने कहा था, ''सरलता और शीघ्रता से सीखी जानेवाली भाषाओं में हिन्दी सर्वोपरि है'' तिलक के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि उन्होंने यह सुझाव दिया था कि देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली 'हिंदी' को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जाना चाहिए।

तिलक और महात्मा गांधी की तरह ही वीर सावरकर भी हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के समर्थक थे।सावरकर का मानना था कि ''एक स्वतंत्र और मजबूत राष्ट्र के लिए एक साझी भाषा का होना जरूरी है। उन्होंने कहा था – प्रांतीय भाषा का अपना महत्त्व है और वे समृद्ध भाषाएँ हैं। लेकिन पूरे भारत को प्रशासनिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से एक सूत्र में बाँधने की क्षमता केवल हिन्दी में ही है।''

सावरकर के सन्दर्भ में ये माना जाता है कि उन्होंने हिन्दी और मराठी भाषा के लिए कई नए शब्द भी गढ़े। कई अंग्रेजी शब्दों के लिए इन हिन्दी शब्दों का उपयोग, प्रशासनिक और सार्वजनिक स्तर पर होता है। जैसे **Director** के लिए निदेशक **Mayore** के लिए महापौर **Telephone** दूरभाष **Budget** आय-व्यय पत्रक, Parliyament संसद। इसके अलावा और भी कई शब्द हैं जो खेलों और कलाओं के क्षेत्र में उपयोग किये जाते हैं। सावरकर मात्र राजनीति और स्वतंत्रता आन्दोलन तक सीमित नहीं हैं बल्कि वे एक कवि, भाषाविद् और विपुल साहित्य संपदा के रचनाकार हैं। जहाँ एक ओर लोकमान्य तिलक ने हिन्दी का समर्थन किया,महात्मा गांधी ने हिन्दी को जनमानस की भाषा के रूप में प्रोत्साहित कर प्रतिष्ठित किया, वहीं दूसरी ओर सावरकर ने हिन्दी को राष्ट्रीय गौरव और देश की सुरक्षा व एकता का अनिवार्य हथियार माना।

आचार्य विनोबा भावे तो पूरे देश की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि होने पर ज़ोर देते रहे हैं। भाषा और लिपि को लेकर उनकी सोच गहरी और व्यवहारिक थी। उनका मानना था कि एक लिपि होने से भाषाएँ आपस में सम्पर्क में अधिक आसानी से आ सकेंगी और सांस्कृतिक विविधा को समझना भी अधिक सुलभ होगा। जब वे वेल्लोर जेल में बंद थे, तब उन्होंने दक्षिण भारत की चारों भाषाओं का गहरा अध्ययन किया था, और पाया था कि इन भाषाओं में बहुत से शब्द समान हैं, बस लिपि अलग होने के कारण लोग समझ नहीं पाते।

इसी समस्या के निदान के लिए उन्होंने देवनागरी में भी कुछ सुधार करते हुए उसे और सरल बनाया। उन्हीं के प्रयासों से सन् 1975 में नई दिल्ली में ''नागरी लिपि परिषद'' की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि इस देवनागरी को देश की सभी भाषाओं के लिए एक सम्पर्क लिपि (**Link Script**) के रूप में विकसित किया जाए।पर क्या हो सका? उनका कहना था कि यूरोप में भाषाएँ तो बहुत हैं, जैसे स्पेनिश, फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन लेकिन उनकी लिपि 'रोमन' ही है। इस एक लिपि की वजह से दूसरी युरोपीय भाषा सीखना आसान हो जाता है।इसी आधार पर उनका सपना था ''यदि रोमन पश्चिम की लिपि है, तो देवनागरी कल के पूर्व (**East**) की लिपि होगी।''

भाषाएँ भले अलग रहें लेकिन यदि लिपि एक हो जाए तो कोई भी उत्तर भारतीय दक्षिण भारत की भाषाओं को मात्र अल्प समय में सीख सकेगा। इससे राष्ट्र की एकता और संस्कृति मजबूत होगी।

काश, भाषा को मात्र अभिव्यक्ति का साधन न मानकर, संस्कृति, सभ्यता और भारतीयता की मूल चेतना के लिए हम इसकी एकरूपता और आवश्यकता पर विचार कर पाते।

– ज. गं. फगरे

संपादकीय

संकल्प अभिनव भारत का

– डॉ. सुनील देवधर, पुणे

स्वामी विवेकानन्द के सन्दर्भ में राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है – ''अभिनव भारत को जो कुछ कहना था वो विवेकानन्द के मुख से उद्‌गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया। विवेकानन्द वह सेतु है, जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं, विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और वैश्विकता, उपनिषद (अध्यात्म) और विज्ञान सब समाहित होते हैं।''

दिनकर जी की ये बात विवेकानन्द के माध्यम से भारत के स्वरूप और स्वभाव को रेखांकित कर रही है।

भारत ने लम्बे समय तक विदेशी आक्रान्ताओं के हमलों को झेला। हमारी संस्कृति और आस्था को कुचला गया। यहाँ तक की हमारी विज्ञान आधारित मान्यताओं और संस्कारों की भी आलोचना और भर्त्सना की गई। ये क्रम लगभग 10 वीं 11 वीं शताब्दी से चलता रहा। मुगलों और अंग्रेजों की दासता से 15 अगस्त 1947 को हमें स्वतंत्रता मिली, लेकिन यह स्वतंत्रता भी न केवल देश को विभाजित कर गई बल्कि हमारी मानसिकता और सोच को भी इस विभाजन ने विखण्डित किया। सत्ता तो मिली पर तत्त्व और निष्ठा, सत्व और प्रतिष्ठा के प्रति उदासीनता बढ़ती गई और आज तक (भी) हम उससे उबरे नहीं हैं।

15 अगस्त भारत की स्वतंत्रता का दिवस है, परतंत्रता के कारणों और इतिहास पर दृष्टि डालने का दिवस है। बीती गलतियों से सीख लेने और सचेत रहने का दिवस है। राष्ट्र के स्वाधीनता संग्राम में बलिदान होनेवाली हुतात्माओं के स्मरण का दिन है। लगातार किए जा रहे प्रयत्नों और संघर्षों की ओर मुड़कर देखने का दिन है। भारत के भविष्य को सुदृढ़ करने का संकल्प,लेने का दिन है।

हमारी आजादी किसी एक विचार और व्यक्ति के कारण नहीं है बल्कि कागज–कलम और हथियार–बम के साझा प्रयोगों के कारण है। दोनों ही विचार अंग्रेजों पर दबाव बना रहे थे। 1857 की विप्लवी चेतना को जगाए रखने के लिए लंदन के इंडिया हाऊस में सन् 1908 में इस संघर्ष की अर्धशताब्दी का आयोजन किया गया. इस आयोजन में वीर सावरकर ने 1857 की चेतना को जगाए रखने का आह्वान किया. लाला हरदयाल भी इस आयोजन में थे। तीन वर्ष बाद उन्होंने गदर पार्टी की स्थापना की। अमेरिका इसका केन्द्र था, लाला हरदयाल वहीं अमेरिका में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। इस पार्टी का भी उद्देश्य था अंग्रेजों की गुलामी से भारत की आजादी, प्रशासन में भारतीयों की उचित भागीदारी। सन् 1924 में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य सशस्त्र क्रांति के जरिए अंग्रेजी को देश से बाहर खदेड़ना था, 9 अगस्त 1925 को काकोरी कांड हुआ, सरकारी खज़ाना लूटने के अपराध में इस कांड में शामिल रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, ठाकुर रोशन सिंह और अशफाक उल्ला को फांसी दी गई। 8 अप्रैल 1929 को सेंट्रल एसेम्बली बम कांड हुआ, जिसके लिए मुक़दमा चला कर अंग्रेज सरकार ने सरदार भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त और राजगुरु को फांसी दी. मंगल पांडे से लेकर लाला लजपत राय, विपिन चंद्र पाल, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस जैसे नामों के अलावा न जाने कितने नाम हैं जो अपनी आवाज बुलन्द कर रहे थे।

स्वतंत्रता संघर्ष के समय युगान्तर, स्वराज्य, वन्देमातरम्, गदर, कर्म योगी, प्रताप, केसरी, वीर अर्जुन, जैसे समाचार पत्र और पत्रिकाएँ थीं जो अपने लेखों, समाचारों और विचारों से अंग्रेजी सत्ता को हिला रहे थीं, 'स्वराज्य' पर वेतन लिखा होता ''दो सूखी रोटी और एक ग्लास ठंडा पानी'' कई सम्पादकों को सज़ा दी गई। महात्मा गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा ''अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को लिया नहीं, बल्कि ये कहिए हमनें उन्हें दे दिया है, वह अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमनें उन्हें टिका रखा है।'' इसी पुस्तक में भाषा के प्रश्न पर वे लिखते हैं ''हिन्दुस्तान की भाषा अंग्रेजी नहीं बल्कि हिन्दी है, वह आपको सीखनी

पड़ेगी. अंग्रेजो के लिए गांधीजी का ये कथन, उन पर तो लागू न हो सका, काश ये हम भारतीयों पर इस पुस्तक के लिखे जाने के 100 वर्ष बाद भी (अगर) सत्य और लागू हो सके।

स्वतंत्रता के इतिहास के बारे में हमने बहुत कुछ पढ़ा और जाना, लेकिन कई वर्षों तक हम ऐसा बहुत कुछ नहीं जान पाए, जिससे जानना आवश्यक था, जो हमारे सोए स्वाभिमान को जगा सके, हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं, और धार्मिक आस्थाओं का उपहास न हो सके. हम सब राष्ट्र के लिए कह सकें -

''वयं राष्ट्रे जागृयाम्'' अर्थात हम राष्ट्र को सदैव जीवन्त और जागृत बनाए रखेंगे। स्वामी विवेकानन्द के विचार का आशय और सार हमें दिशा और सकारात्मक सोच देगा।

==

प्रतिक्रियाएँ -

(1)

समिति-संवाद की जून-जुलाई की पत्रिका अत्यंत आकर्षक है। समिति-संवाद पत्रिका के मुखपृष्ठ पर छपे मुक्तक लाजबाब हैं।

- डॉ. कांतिदेवी लोधी, पुणे

=====================================

(2)

''अम्बेडकर के जीवन को प्रभावित करने वाली स्त्रिया'' मेरा यह लेख पुणे की 'समिति संवाद' पत्रिका के संयुक्तांक अप्रैल-मई २०२६ में प्रकाशित हुआ है। पत्रिका के कार्यकारी संपादक आदरणीय भाई डॉ. सुनील केशव देवधर जी का हार्दिक आभार। मुझे पहली बार इस पत्रिका को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। निश्चित रूप से यह एक उच्च कोटि की वैचारिक पत्रिका है। संपादक ज.गं. फगरे एवं कार्यकारी संपादक डॉ. सुनील देवधर जी को पत्रिका के संपादक के लिए हार्दिक बधाई एवं साधुवाद।

- डॉ. सुश्री शरद सिंह, सागर, (म.प्र.)

=====================================

(3)

प्रणाम आदरणीय

अभिनन्दन आपका

आपके सौजन्य से समिति संवाद पत्रिका हमें प्राप्त हुई। पत्रिका स्तरीय है। इसकी छपाई सुंदर, त्रुटिरहित है। लेख व स्तंभ सुरुचिपूर्ण लगे। उत्कृष्ट संपादन के लिए शुभकामनाएं, बधाई!

- अनिता कुमार, पुणे

(4)

'समिति संवाद' का सुन्दर, समग्र, सधा हुआ और सुव्यवस्थित संपादित अंक... आपको अनन्य बधाइयां!

''सूरज का जन्म'' को भी आपने शामिल किया, सुखद।

- डॉ. दामोदर खड़से, पुणे

=====================================

(5)

पत्रिका बहुत बढ़िया है। विषयों का चयन बहुत अच्छा है। साहित्यकारों को बेहतर मंच एवं पाठकों को पढ़ने के अवसर प्रदान कर रही है। आपके संपादन में उत्तरोत्तर प्रगति करे। हार्दिक शुभकामनाएं!

- प्रभात गोस्वामी, जयपुर

सूक्तियाँ

दु:ख को दूर करने की एक अमोघ औषधि है- मन से दु:खों की चिंता न करना।

-वेदव्यास

काम की समाप्ति संतोषप्रद हो तो परिश्रम की थकान याद नहीं रहती।

-कालिदास

पराजय से सत्याग्रही को निराशा नहीं होती, बल्कि कार्यक्षमता और लगन बढ़ती है।

-महात्मा गाँधी

लेख

स्वाधीनता दिवस

आज़ादी : अर्थ और आयाम

– सुमित पॉल, पुणे

'स्वतंत्र' देश में स्वतंत्रता की साँस ले पाना सचमुच सौभाग्य की बात है। हम सबका अहोभाग्य कि हम में से अधिकांश लोगों ने परतंत्रता के दिन नहीं देखे और उस घुटन भरी ज़िंदगी को नहीं सहा। हमें स्वतंत्रता दिलाने में जिन अनगिनत लोगों की महती भूमिका रही उनका स्मरण करना केवल औपचारिकता नहीं अपितु अनिवार्यता है। उन्हें भी श्रद्धापूर्वक नमन। यदि 'प्लासी की जंग' (1757) से अंग्रेजों की सशक्त उपस्थिति को माना जाए तो सन् 1947 तक लगभग 200 साल वे हम पर हुकूमत करते रहे और 'सोने की चिड़िया' का मनमाने तरीके से दोहन करते रहे।

यहाँ से मुद्दे की बात की शुरुआत होती है और 'स्वतंत्रता' 'परतंत्रता' जैसे शब्दों की परतें खुलती दिखती हैं। पहली बात, बल्कि प्रश्न, तो यह है कि क्या हमारा देश केवल दो सौ, सवा दो सौ साल ही गुलाम रहा? क्या हम भूल गए कि जब मुहम्मद बिन क़ासिम ने सन् 712 ईसवी में सिंध पर चढ़ाई की तभी से गुलामी किसी न किसी रूप में हमारी नियति बन गई। फिर वो लोधी वंश हो.. गुलाम वंश हो, पुर्तगाली हों या अंग्रेज़, जो भी यहाँ आया, कुछ शताब्दियों के लिए टिक गया। जी हाँ, विदेशी आक्रांता यहाँ सदियों तक शासन करते रहे। इसमें कोई शक नहीं कि बीच-बीच में हम आज़ाद और खुली हवा में साँस लेते रहे लेकिन यह तथाकथित आज़ादी एक कैदी की पुलिस की निगरानी में टहलने की आज़ादी जैसी थी, प्रकृत स्वतंत्रता नहीं थी। इसलिए देखा जाए तो तकरीबन 1200 वर्ष हम दासता की बेड़ियों में जकड़े रहे।

गुलामी जब इतनी लंबी चलती और खिंचती है तो ज़ाहिर-सी बात है कि वो हमारे वजूद, हमारे अस्तित्व का अविभाज्य हिस्सा बन जाती है। अंग्रेज़ी में जिसे हम **DNA** का हिस्सा बन जाना कहते हैं। गुलामी जब अस्थि-मज्रा में दाख़िल हो जाती है तो वो आपकी प्रकृति ही नहीं बल्कि आपकी चेतना बन जाती है। यही हमारे साथ हुआ। हम कहने को आज़ाद तो हैं लेकिन सम्यक् रूप से हम आज भी स्वतंत्र नहीं हैं। काग़ज़ पर दर्ज आज़ादी, आज़ादी नहीं होती, उसमें दिखावे की बू शामिल होती है और सहजता का नितांत अभाव दिखाई देता है।

स्वतंत्रता एक विचार है, सोच है, यह एक मन:स्थिति है। बक़ौल अनवर जौनपुरी, ''सींखचे क्या रोक पाएँगे मुझे/क़ैद में भी क़ैदी नहीं हूँ मैं।'' व्यक्ति, गुलामी में भी स्वयम् को आज़ाद कह और समझ सकता है, बशर्ते वह दिल से यह महसूस करे कि वो आज़ाद है।

फ्रेंच अस्तित्ववादी जाँ पॉल सार्त्र कहते थे **Man is condemned to be free** अर्थात् 'व्यक्ति स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है। इसी बात को अज्ञेय इस तरह कहते हैं, स्वतंत्रता मेरी विवशता है।'

लेकिन 'यक्ष प्रश्न' यह है कि सदियों की गुलामी से जर्जरित भारतीय मानस क्या सचमुच आज़ाद हो पाया है? विडंबना यह है कि हालांकि हमारी आज़ादी कष्टार्जित रही, इसके बावजूद हम इसके मर्म को नहीं समझ पाए। मैं इस लेख के शुरू में कह चुका हूँ कि आज़ादी एक सम्यक् और संपूर्ण बोध है। यह आंशिक ग्राह्य नहीं है। आप यह नहीं कह सकते हैं कि मैं आज़ाद हूँ परंतु मेरी सोच पराधीन है। स्वाधीन व्यक्ति की सोच भी स्वाधीन होनी चाहिए। उधार की सोच आपको मुक्त नभ में परिंदे की मानिंद उन्मुक्त परवाज़ करने से रोकती है।

आज़ादी के दशकों बाद जब आप आत्म-मंथन करते हैं; स्वयं को चेतना और नैतिकता के कठघरे में खड़ा करते हैं तो क्या आप वाक़ई ख़ुद को पूर्ण रूपेण स्वतंत्र महसूस करते हैं? आपकी स्वतंत्रता क्या आत्म-प्रवंचना नहीं है? कितने वाद, कितने पूर्वाग्रह आपके मन-मस्तिष्क में कुंडली मार के बैठे हैं। वैसे भी हर वाद, विवाद की बुनियाद है।

(पृष्ठ क्र. 17 पर...)

भारत में लोकतंत्र – हिंसा एवं वैधता का संकट

– डॉ. विजय कुमार लाल, पटना

भारत में लोकतंत्र :

भारत आज विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा पर सबसे अधिक आबादी वाला देश है, यद्यपि इसके पास विश्व की कुलभूमि का 2.4 प्रतिशत हिस्सा है, पर यह एक ऐसा देश है जहाँ 140 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं, दर्जनों भर भाषाएँ बोली जाती हैं, हजारों जातियाँ हैं, यहाँ के लोग अनेक धर्मों का पालन करते हैं– फिर भी यह विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतंत्र भारत में केवल एक राजनीतिक व्यवस्था मात्र नहीं है, बल्कि यह हमारा जीवन दर्शन एवं सामाजिक पद्धति भी है। ऐसा इसीलिए कि भारत में राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक लोकतंत्र यात्रा उतार–चढ़ाव, संघर्ष और जीवटता से भरी हुई है।

भारत में लोकतांत्रिक विचारों की जड़ें केवल 1947 में नहीं पड़ीं। प्राचीन भारत में ग्राम समाओं और गणराज्यों की परम्परा रही है। वैशाली जैसे गणराज्य जो ईसापूर्व छटी शताब्दी में अस्तित्व में थे, सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया के प्रमाण हैं। इन स्थानीय परिषदों ने सदियों तक समुदाय की भागीदारी और संस्कृति को जीवित रखा। चार्ल्स मेटकॉफ (**Charles Metcalf**) ने तो अपने विश्लेषण में भारतीय गाँवों को छोटा गणराज्य (**Little Republic**) की संज्ञा दी है। हाँ, ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारतीय बुद्धिजीवियों ने पश्चिमी लोकतांत्रिक आदर्शों से जरूर प्रेरणा ली।

26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ जो देश के सभी नागरिकों को वयस्क मताधिकार, मौलिक अधिकार और संसदीय लोकतंत्र की गारंटी देता है। वेस्ट मिनिस्टर प्रणाली पर आधारित संविधान में सभी 18 वर्ष से ऊपर के नागरिकों को – जाति, धर्म, लिंग, जन्मस्थान और वर्ग विभेद के बिना मतदान का अधिकार दिया गया है। उस समय यह एक अत्यन्त साहसिक निर्णय था, क्योंकि अंग्रेजों ने स्वतंत्रता के अवसर पर जो भारत हमें दिया वह सामाजिक रूप से विखण्डित, आर्थिक रूप से जर्जर, सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा और मानसिक रूप से दबा एवं कुचला हुआ था। उस समय भारत में साक्षरता दर 16 प्रतिशत से भी कम थी। अनेक विद्वान ने यह संदेह जताया कि क्या एक अशिक्षित, गरीब और विषमताओं से भरे देश में लोकतंत्र टिक सकता है।

पर 1952 के पहले आम चुनावमें लगभग 17 करोड मतदाताओं ने मतदान किया और दुनिया को चौंका दिया। तबसे लेकर विभिन्न आम चुनावों में मतदाताओं की सहभागिता निरन्तर बढ़ती गई ओर 2026 के पश्चिम बंगाल विधानसभा चुनाव में 10 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने मतदान कर रिकॉर्ड (**Record**) स्थापित कर दिया है। इतना ही नहीं, पुरुषों से अधिक महिलाओं ने भागीदारी ली, जो लोकतंत्र की जीवंतता का स्पष्ट प्रमाण है। इतना ही नहीं, भारत में 1952 से लेकर आज तक केन्द्र हो या राज्य, सत्ता का हस्तान्तरण बैलेट (**Ballet**) के माध्यम से हुआ है, न कि बुलेट (**Bullet**) के माध्यम से। इस तरह लोकतांत्रिक संस्कृति की जड़ें भारतीय मिट्टी में दिन–प्रतिदिन और गहरी एवं मजबूत होती जा रही है।

स्पष्ट है कि आज भारत विश्व का सबसे बड़ा एवं सफल लोकतांत्रिक देश है। चुनाव लोकतंत्र की नींव है और संविधान इसका संरक्षक। चुनाव के माध्यम से जनता अपने प्रतिनिधि को चुनती है और ये प्रतिनिधि सरकार चलाते हैं। लोकतंत्र में नागरिकों को अपनी बातें कहने, अपने विचारों को प्रकट करने का पूर्ण अधिकार होता है। लोकतंत्र में सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है और निर्णयों में जनता की भागीदारी होती है। लेकिन पिछले 78 वर्षों में कई बार लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्वतंत्रता पर सवाल भी उठे हैं। फलस्वरूप आज भारतीय लोकतंत्र कई चुनौतियों से जूझ रहा है जैसे न्यायपालिका, चुनाव आयोग और मीडिया की स्वतंत्रता पर कई बार विपक्षी दलों द्वारा संदेह व्यक्त किये गए हैं। चुनावों में काले धन एवं अपराधी छवि वाले नेताओं की भूमिका लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करती है, गरीबी, कम साक्षरता दर, अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी एवं जन स्वास्थ्य सेवाओं की कमी सरकार की नाकामी की ओर इशारा करता है, जातीय एवं लैंगिक भेदभाव, साम्प्रदायिक तनाव एवं दंगे न केवल राष्ट्र के विकास एवं उन्नति की गति को धीमा करते हैं,

बल्कि राष्ट्र की छवि को भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घूमिल करते हैं। बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, सार्वजनिक न्याय में देरी लोकतंत्र की नींव को कमजोर कर रहा है। विखरा हुआ कमजोर विपक्ष भी स्वस्थ लोकतंत्र के लिए एक चिन्ता का विषय है।

हिंसा :

हिंसा का सामान्य अर्थ है किसी व्यक्ति, समूह या समुदाय को किसी दूसरे व्यक्ति समूह या समुदाय के द्वारा शारीरिक बल का प्रयोग कर शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक क्षति पहुँचाना। हिंसा सार्वभौमिक है। विश्व का कोई समाज न कभी हिंसामुक्त रहा है और न आज है। विश्व स्तर पर हिंसा की घटनाओं में तीव्रता आ रही है और तकनीकी विकास के साथ इसके विभिन्न स्वरूप उभर कर सामने आ रहे हैं। आज समाज वैज्ञानिकों के बीच यह विवाद का विषय बना हुआ है कि यदि हिंसा मनुष्य के क्रोध का परिणाम हैं, तो यह मानव का जन्मजात गुण है या सीखा हुआ व्यवहार। एक तरफ सिगमण्ड फ्रायड (**Sigmund Freud**) एवं अन्य समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि हिंसा मुख्यत: मानव का जन्मजात गुण है, तो दूसरी तरफ कार्ल मार्क्स (**Karl Marw**) समेत अनेक समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि हिंसा समाज में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, एवं राजनीतिक विषमताओं की देन है।सच है कि हिंसा को केवल व्यक्तिगत दृष्टि से नहीं देखा जा सकता बल्कि इसे सामाजिक–आर्थिक विषमताओं की उपज के रूप में देखा जाना चाहिए। यानि समाज में व्याप्त असमानता ही असमान व्यवस्था शोषण एवं हिंसा की जननी है।

अमेरिकी राजनीति विचारक हन्ना एरेंट (**Hannah Arendt**) का मानना है कि मानव समाज में हिंसा अन्य साधनों की तरह लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन है। समाज का कोई भी समूह या तबका जब किसी लक्ष्य (**goal**) को अपने लिए अत्यधिक मूल्यवान (**Valuable**) मानता है, तो उसे प्राप्त करना उसका वांछनीय लक्ष्य बन जाता है। वे जब अहिंसात्मक या किसी अन्य तरीके से उस लक्ष्य को हासिल करने में असमर्थ होते हैं, तो अन्तत: हिंसा को साधन के रूप में अपनाते हैं। हाँ, लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधन का चुनाव इस बात पर निर्भर करता है कि उस समूह ने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किस मजबूत इरादे के साथ लक्ष्य को मूल्यांकित किया है। यदि लक्ष्य बहुत ही मूल्यवान है या यों कहें कि अपरिहार्य है तो भूत के अहिंसात्मक साधनों की विफलता के मद्दे नजर हिंसा को अन्तिम साधन के रूप में अपनाता है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिंसा की भूमिका रही है। कुछ स्वतंत्रता सेनानियों का मानना था कि सविनय अवज्ञा, जनप्रतिरोध एवं अँग्रेजों के विरुद्ध हिंसात्मक कारर्वाई लोगों में राष्ट्रीय चेतना एवं उत्तरदायित्व का बोध लायेगा और स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त लोग स्वत: हिंसा का परित्याग कर देंगे। पर ऐसा नहीं हुआ बल्कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिंसा की घटनाएँ और बढ़ गई।दरअसल भारत में नई राजनीतिक व्यवस्था यानी लोकतंत्र ने समाज के वंचितों, पिछड़ों एवं कमजोर वर्ग के लोगों को ऊपर उठने का अवसर एवं सामाजिक सुविधा प्राप्ति हेतु अनेक अवसर एवं संभावनाएँ प्रदान कीं। लोकतांत्रिक संस्थाएँ एवं वयस्क मताधिकार ने इन्हें राजनीतिक क्रियाओं की ओर मुखातिब किया। राजनीतिक दलों में हैसियत की हकीकत का एहसास जातीय आधार पर दिलाने के लिए जनसंख्यात्मक शक्ति (**numerical game**) ने संघर्ष को बढ़ावा दिया और इसने हिंसा को जन्म दिया। परिणाम स्वरूप, समय–समय पर साम्प्रदायिक हिंसा, जातीय हिंसा, कृषक हिंसा, भाषायी हिंसा, चुनावी हिंसा की घटनाएँ घटने लगीं।

लोकतंत्र एवं हिंसा :

सामान्यत: लोकतंत्र एवं हिंसा को परस्पर विरोधी माना जाता है। फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में साम्प्रदायिक हिंसा, कृषक हिंसा, जातीय हिंसा, राजनीतिक हिंसा, चुनावी हिंसा, भीड़, तंत्र (**mob violence**) एवं नक्सलबाड़ी हिंसा समय–समय पर होते ही रहे हैं।

साम्प्रदायिक हिंसा का इतिहास भारत में उतना ही पुराना है जितना आधुनिक भारत का इतिहास। धर्म एक व्यक्तिगत आस्था का विषय जरूर है, लेकिन जब साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़का कर इसे एक राजनीतिक हथियार बनाया जाता है, तो वह साम्प्रदायिक हिंसा का कारण बन जाता है। 1947 में देश विभाजन के समय लाखों लोग मारे गए। यद्यपि भारत को एक 'धर्म निरपेक्ष' और बाद में संशोधन कर इसे एक 'पंथ निरपेक्ष' राज्य घोषित किया गया पर न तो भारत की जनता और न ही भारत की सरकार ने पंथ निरपेक्षता का पालन किया। शाहबानो केस एवं श्रीराम गर्भगृह का ताला खोलना सरकारी हस्तक्षेप के रूप में देखा जा सकता है, तो जबलपुर (1961), राउरकेला (1964), इलाहाबाद (1969), मुम्बई (1974), मेरठ (1987 और भागलपुर (1989) इत्यादि दंगों में जनता की संलिप्तता इसके प्रमाण हैं। 1984 में इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद सिखों के खिलाफ दिल्ली एवं देश के अन्य शहरों में जो दंगे हुए उसमें हजारों

सिख मारे गए। 1992 में बाबरी मस्जिद काण्ड के बाद देश भर में साम्प्रदायिक दंगे हुए उसमें हजारो लोगों की जाने गईं। 2002 में गुजरात दंगे में भी हजारों जानें गई।

गुणात्मक दृष्टि से साम्प्रदायिक हिंसा अन्य प्रकार की हिंसाओं से अलग होती है। इसकी खास विशेषता यह है कि यह किसी माँग से प्राय: जुड़ी नहीं होती है और न ही किसी सत्ता के खिलाफ। पर हकीकत में कभी-कभी यह किसी खास माँग से जुड़ी होती है और राजनीतिक दल भी इसमें शामिल हो जाते हैं और इसका राजनीतिक लाभ उठाना चाहते हैं। वास्तव में साम्प्रदायिक हिंसा का राजनीतिकरण भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विफलताओं में से एक है। यह भारत के एकीकरण में न केवल बाधक है, बल्कि हमारी राष्ट्रीय पहचान का अपमान भी है।

विगत कुछ वर्षों में भारत में एक नई प्रकार की हिंसा उभरी है- भीड़ द्वारा हत्या (**mob violence**) जो रक्षा के नाम पर, बच्चा चोरी की अफवाहों पर, **Love** जिहाद के नाम पर या किसी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाने के आरोप में-भीड़ ने कानून को अपने हाथ में लेकर निर्दोष लोगों की हत्याएँ की हैं। सोशल मीडिया पर फेक न्यूज ने इस संकट को और गहरा कर दिया है। झूठी अफवाहें और भड़काऊ सामग्री मिनटों में वायरल हो जाती हैं और अचानक जुटी भीड़ किसी निर्दोष पर टूट पडती है। भीड़तंत्र, लोकतंत्र के लिए एक गम्भीर खतरा है, क्योंकि यह कानून के शासन को सीधी चुनौती देता है। जब कानून की जगह भीड़ की मर्जी चलने लगे, तो लोकतंत्र का मूल आधार ही खतरे में पड़ जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में अन्य अनेक प्रकार की हिंसात्मक घटनाएँ घटी हैं, जैसे आरक्षण के सवाल से जुड़ी हिंसा नक्सलवादी हिंसा, जातीय हिंसा आदि-आदि। लोकतांत्रिक समाज में हिंसा के अनेक कारण होते हैं जैसे -सामाजिक असमानता आर्थिक गैर बराबरी, राजनीतिक ध्रुवीकरण, पहचान की राजनीति, कमजोर संस्थाएँ, क्षेत्रीय विषमता एवं असंतुलन आदि-आदि। पर हम यहाँ उस महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय कारण का विश्लेषण करना चाहते हैं जिसके आधार पर आरक्षण से जुड़ी हिंसा, नक्सलवादी हिंसा और दलितों पर होने वाली हिंसा का विश्लेषण कर सकते हैं। वह महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय कारण है -

वैधता का संकट (Legitimation Crisis)

'वैधता का संकट' की अवधारणा की चर्चा जर्मन विचारक जर्गन हैबरमास (**Jurgen Habermas**) ने 1973 में दी है। इनका कहना है कि वैधता का संकट मुख्यत: हाल की घटना है। तकनीकी क्रान्ति संचार क्रान्ति एवं बदलते राजनैतिक मूल्यों ने लोगों के बीच की दूरी बढ़ा दी है। सामन्तवादी समाज को जन मानस द्वारा वैधता प्राप्त थी, क्योंकि सारे लोग एक ही मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध थे। पर अब तकनीकी एवं राजनीतिक चेतना ने अनेक मूल्यों को जन्म दिया है। परिणामस्वरूप समाज का विभिन्न तबका विभिन्न मूल्यों के साथ जुड़ने एवं संगठित होने लगा हैं। इस तरह देखें तो किसी नई व्यवस्था को वैधता चाहिए पर वैधता का संकट तब उत्पन्न होता है जब व्यवस्था उस समाज के सभी तबकों की माँग पूरा करने में असमर्थ होती है। या यूँ कहें कि जब समाज के पिछड़े तबकों में सापेक्षिक वंचिता की भावना पनपती है। दरअसल वैधता का संकट परिवर्तन की माँग करता है।

भारत में जाति व्यवस्था सदियों पुरानी है। यह सामाजिक संरचना लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ एक जटिल द्वन्द्व में उलझी हुई है। एक तरफ लोकतंत्र ने दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों को राजनीतिक शक्ति दी है, तो दूसरी ओर इसी राजनीतिक शक्ति ने जातीय संगठन (**Caste organiyation**) का निर्माण कर जातीय पहचान को और अधिक मजबूत किया है। समाजशास्त्री आन्द्रे बेतेई (**Andre Beteille**) के अनुसार आज भारत में जातीय संगठन, छाया समाज (**Shadow Society**) के रूप में काम करती है। समाज के पिछड़े तबकों के लिए जातीय संगठन और उनकी संरचनात्मक शक्ति ने उन्हें नया एहसास दिया है। वे महसूस करने लगे हैं कि अब उनका पिछड़ायन उनके भाग्य का दोष नहीं, बल्कि उन परम्परागत मूल्यों की देन है, जिसने जानबूझ कर उन्हें समाज के निचले पायदान पर धकेल कर रखा। राजनीतिक शक्ति एवं सत्ता की प्राप्ति, भूस्वामित्व, सरकारी नौकरियाँ में प्रवेश तथा उच्च प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों में उनके बच्चों का नामांकन अब एक मूल्यवान लक्ष्य बन गया है। पिछड़ी जातियों द्वारा सरकारी नौकरियों एवं उच्च शिक्षण संस्थानोंमें नामांकन हेतु आरक्षण की माँग ने न केवल अगड़ी जातियों के सामाजिक उच्च प्रस्थिति को चुनौती देकर वैधता के संकट की परिस्थिति को जन्म दिया है, बल्कि उन्हें अपनी बढ़ती राजनीतिक ताकत का भी एहसास कराया है। अगड़ी जातियों के सदस्यों ने जब पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का विरोध किया, तो फिर अगड़ी एवं पिछड़ी जातियों के

बीच देश के अनेक भागों में हिंसा की घटनायें घटी। आरक्षण के नियम लागू होने के बाद भी आज भारत में जातीय वैमनस्य साफ तौर पर दिखाई देता है। सामन्तवादी समाज में अगड़ी जातियों को पिछड़ी जातियों द्वारा जो उच्च प्रस्थिति की वैधता प्राप्त थी, उसे पिछड़ी जातियों ने अस्वीकार कर दिया है।

भारतीय गाँवों में आज भी जमीन और जाति बहुत हद तक एक व्यक्ति के सामाजिक हैसियत की हकीकत का मानदण्ड है। भारत में जातीय असमानता के साथ–साथ भूमि का असमान वितरण सदियों से रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के काल में अधिकांश जमीन पर उच्च जातियों का स्वामित्व था और निम्न एवं अति पिछड़ी जातियाँ सर्वाधिक भूमिहीन। भूमिहीनता, आवासहीनता, पेशे की अस्थिरता जैसे कि उनकी तकदीर में विधाता ने अंकित कर रखी थी और वे उसी रूप में उसे स्वीकार करते आ रहे थे। पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब उनमें राजनीतिक दलों ने सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जगाई तब वे धीरे–धीरे संगठित होने लगे और उच्च जातियों के स्वामित्व को अस्वीकार करना शुरू किया। दलित आन्दोलनों ने उनमें स्वाभिमान जगाया। फलस्वरूप उन्होंने उच्च जातियों की प्रभुता को चुनौती देकर वैधता संकट की परिस्थिति उत्पन्न की। नतीजा यह हुआ कि बिहार एवं अन्य राज्यों में दलित नरसंहार की अनेक घटनायें घटी।

नक्सलवादी आन्दोलन से उत्पन्न हिंसा को भी सापेक्षिक वंचिता के आधार पर समझा जा सकता है। यद्यपि नक्सलवादी हिंसा पश्चिम बंगाल में शुरू हुई पर धीरे–धीरे कई राजनीतिक दलों के संरक्षण के चलते यह बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ समेत देश के अनेक राज्यों में फैल गई। मार्क्सवादी नेताओं ने 1960 के दशक में बंगाल के दार्जिलिंग जिले के गाँवों में गरीब, भूमिहीन, अत्यन्त पिछड़ी जातियों के लोगों को संगठित कर उन्हें भूस्वामियों के खिलाफ भड़काना शुरू किया। चारू मजुमदार एवं कानू सान्याल जैसे नेताओं ने उन्हें भूस्वामियों के विरुद्ध हिंसा का पाठ पढ़ाया। उन्होंने उन्हें स्पष्ट कहा कि सरकारी तंत्र न्याय करने में असफल हो चुका है, अत: हिंसा ही अब एकमात्र उपाय है। बिहार जैसे राज्य में तो '6 इंच घोटा' करने का नारा प्रचलन में आ गया था।

इन सारी चर्चाओं से स्पष्ट है कि हिंसा ने लोकतंत्र को कई स्तरों पर क्षति पहुँचाया है। उदाहरण स्वरूप मतदाताओं में भय, विश्वास का क्षरण, संवैधानिक मूल्यों का हनन, आपसी वैमनस्य आदि–आदि। अब प्रश्न उठता है कि क्या लोकतंत्र हिंसा विहीन हो सकता है? तो इसका उत्तर है हाँ, बशर्ते न्यायालय त्वरित एवं निष्पक्ष न्याय दे तो अपराधियों में भय उत्पन्न होगा। पर इसके लिए जरूरी है न्यायाधीशों की संख्या पर्याप्त रूप से बढ़ाना, फास्ट ट्रैक कोर्टस की संख्या बढ़ाना क्या तथा न्यायिक प्रक्रियाओं को सरल करना। भूमि सुधार कार्यक्रम सरकार की इच्छा शक्ति के अभाव में अबतक असफल ही रहा है। जरूरी है कि दृढ़ राजनीतिक इच्छा द्वारा भूमि सुधार कार्यक्रमों को सही ढ़ंग से लागू कर जमीन का समान वितरण करना। पुलिस सुधार भी अति आवश्यक है। पुलिस से जनता का विश्वास उठ चुका है। पुलिस को राजनीतिक दबाव से मुक्त करना होगा। एक स्वायत, प्रशिक्षित और संवेदनशील पुलिस बल हिंसा रोकने में अहम् भूमिका निभा सकती है। शिक्षा के माध्यम से जागरूकता लाना भी अति आवश्यक है। संवैधानिक मूल्यों, मानवाधिकारों और विविधता के सम्मान की शिक्षा बचपन से ही दी जानी चाहिए। जो पीढ़ी सहिष्णुता और सद्भाव में पली हो, वह हिंसा को कम स्वीकार करती है। हाँ, मीडिया को भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। अन्तत: आर्थिक–सामाजिक असमानता को कम करना हिंसा की जड़ पर जबर्दस्त प्रहार है। रोजगार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक सभी की पहुँच सुनिश्चित करना हिंसा को कम करने का सबसे स्थायी उपाय है।

निष्कर्षत: लोकतंत्र और हिंसा के बीच जटिल संबंध है, लोकतंत्र का मुख्य उद्देश्य हिंसा को कम करना और विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना है। फिर भी, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से लोकतांत्रिक समाजों में हिंसा की घटनायें घटती हैं। एक सशक्त लोकतंत्र वही है जो नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करे, न्याय सुनिश्चित करे और संवाद के माध्यम से संघर्षो का समाधान निकाले। इसीलिए लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत बनाना तथा सामाजिक समानता और न्याय को बढ़ावा देना हिंसा को कम करने के लिए आवश्यक है।

निश्चय ही दृढ निश्चयी लोगों का परिश्रम फल–प्राप्ति पर्यंत चलता रहता है।

आज़ादी के अर्थ

– डॉ. रेणु मिश्र, लखनऊ

आज आज़ादी का महोत्सव हमारी सोसाइटी में ज़ोर शोर से मनाया जा रहा था। कई दिनों से तैयारियाँ चल रहीं थीं। सोसाइटी का मैनेजमेंट और स्टाफ़ मुस्तैदी से काम पर लगा हुआ था। परिसर की साफ़ सफ़ाई, नारंगी, सफ़ेद और हरे रंग के गुब्बारे और दुपट्टों से सजावट हो रही थी। लॉन के बीचोंबीच झंडे को लगाने का प्रबंध हो रहा था। उसके चारों तरफ़ फूलों से रंगोली की सजावट की जा रही थी। सबका उत्साह देखते ही बनता था और हो भी क्यों नः आखिर आज़ादी इतनी आसानी से तो आई नहीं थी। कितनी कुर्बानियों के बाद यह दिन देशवासियों को देखने को मिला था। उस आज़ादी का जश्न हर साल हम मनाकर उन वीर जवानों की कुर्बानियों को याद कर लेते हैं और उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं । उन्हीं की शहादत की वजह से हम आज आज़ाद भारत में साँस ले रहे हैं और अपने मनमुताबिक जीवन जी पा रहे हैं।

इस ख़ुशगवार माहौल में तमाम तैयारियों के बीच तभी अचानक एक व्यवधान प्रस्तुत हुआ। सोसाइटी के पीछे की तरफ़ से किसी महिला के ग़ुस्से से चिल्लाने की आवाज़ आई। शायद वह किसी स्टाफ़ को डाँट रहीं थीं..डाँट क्या यूँ कहिए कि जलील कर रहीं थीं। वहाँ जाने पर पता चला कि वह बगीचे से फूल तोड़ रही थीं और गार्ड ने उनको रोका था। बदले में वह उस पर बिफर गई थीं कि उन्हें टोंकने की गार्ड की हिम्मत कैसे हुई। वो मालकिन हैं, गार्ड की तनख़्वाह उनके पैसों से ही आती है और वह कुछ भी करने के लिए आज़ाद हैं। गार्ड सर झुकाए , हाथ जोड़े उनसे क्षमा याचना कर रहा था जबकि उसने कोई गलती नहीं की थी। सोसाइटी की रक्षा करना ही तो काम था उसका और वह अपना कर्तव्य निर्वहन ही कर रहा था। अब तक मैनेजर भी आ चुका था । खैर समझाबुझा कर मामला शांत किया गया। वह महिला बड़बड़ाती हुई अपने फ्लैट में चली गई। यह कोई आज की बात नहीं थी वरन आए दिन ऐसी डाँट फटकार होती रहती थी सोसाइटी में। कहने को वह बहुत पॉश सोसाइटी थी जहाँ सब पढ़े लिखे सुसंस्कृत लोग रहते थे। अभी कुछ दिनों पहले की बात है एक महिला अपने पालतू कुत्ते को लेकर नीचे कॉमन परिसर में घुमाने ले आई थीं और वो भी बिना पट्टे के। वह बेलगाम वहाँ खेल रहे बच्चों के पीछे भाग रहा था, लोग डर के मारे तितर बितर हो रहे थे पर उन महिला के मजाल क्या थोड़ा भी अपनी गलती का अहसास हुआ हो। वो अपनी ही मस्ती में हरी हरी घास पर टहलते हुए प्रकृति का आनंद ले रहीं थीं। कुत्ता किसी को काटे–मारे उनकी बला से। किसी की हिम्मत भी नहीं होती थी कि कोई चूँ भी कर दे उनके खिलाफ क्योंकि परिणाम सब जानते थे।

इस तरह आज़ादी के गलत इस्तेमाल के ये कुछ उदाहरण ही थे वर्ना आएदिन हम समाज में यह सब देखते रहते हैं। हर आज़ाद नागरिक को कहीं भी कूड़ा फेंकने की आज़ादी है, कहीं भी गाड़ी पार्क करने की आज़ादी है, किसी को भी गाली देने की आज़ादी है, सड़क पर बेतहाशा स्पीड में गाड़ी चलाने की आज़ादी है, सिग्नल तोड़ने की आज़ादी है..आदि..आदि। बात सही है कि आजाद भारत के नागरिक को हर बात की आज़ादी है। उसे कोई रोकने की हिम्मत कैसे कर सकता है? आज़ादी प्राप्त किए हुए इतने वर्षों में हम असल में आज़ादी की अहमियत पूरी तरह भूल चुके हैं। कोई भी संस्था नियम कानून के पालन किए बिना नहीं चल सकती। वह कुछ दिनों में ही धराशायी हो जाएगी। ऐसे ही देश के लिए भी कानून को मानना अनिवार्य है।

लोग भूल जाते हैं कि आज़ादी का मतलब उच्छृंखलता या दूसरों के अधिकारों का हनन नहीं होता। आज़ादी के साथ इसीलिए गणतंत्र दिवस भी मनाया जाता है। कोई भी उच्छृंखल स्वतंत्रता बहुत दिनों तक अक्षुण्ण नहीं रह सकती। किसी भी देश को समृद्ध और सशक्त बनाने के लिए आज़ादी के साथ नियमों के पालन का भी प्रावधान है तभी आज़ादी सुफल होती है और लंबे समय तक क़ायम रहती है।

हम सभी नागरिकों का कर्तव्य है कि हम अपनी इस आज़ादी का महत्व समझें और इसे अक्षुण्ण रखने के लिए सदैव प्रयासरत रहें। यही असली देशभक्ति है और यही असल में आज़ादी का अमृत महोत्सव है।

भाषा प्रसंग

हिन्दी दिवस

गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान संदर्भ

– सूर्यकांत नागर, इंदौर

'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है'। दुनिया को ख़बर कर दें कि गांधी अंग्रेजी भूल गया। 'कोई भी देश सच्चे अर्थ में तब तक स्वतंत्र नहीं है, जब तक वह अपनी भाषा में नहीं बोलता । यदि भारत को राष्ट्र बनना है तो यह उसे राष्ट्रभाषा हिंदी ही बना सकती है'। ये हैं कतिपय उद्धरण जो भाषा विषयक गांधी जी के विचारों को दर्शाते हैं । गांधी जी मानते थे कि देश की एकता, अखण्डता, उन्नति और स्थिरता के लिए अपनी भाषा में काम करना आवश्यक है । हिन्दी हमारे राष्ट्रीय गौरव और सांस्कृतिक चेतना की प्रतीक है। गांधी के हिन्दी प्रेम और उनकी संकल्प-दृढ़ता देखिए कि आज़ादी के तुरंत बाद जब बीबीसी पत्रकार ने उनसे अंग्रेजी में साक्षात्कार लेना चाहा तो उन्होंने साफ कह दिया कि दुनिया को बता दें कि गांधी अंग्रेजी भूल चुका है। देश के कर्णधारों के लिए यह स्पष्ट संदेश था कि उन्हें अंग्रेजी से मुक्त होकर अब अपना काम-काज राष्ट्रभाषा में करना है। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी भाषा और शिक्षा-पद्धति का बहिष्कार कर विद्यापीठी शिक्षा की नींव रखी थी। उन्होंने कहा था कि विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा की हिमाकत करने वाले जनता के दुश्मन हैं। मूर्धन्य कवि नरेश मेहता ने सही कहा था कि हिंदी की लड़ाई का आरंभ गुजरात से हुआ था और इस लड़ाई को लड़ने वाला इस शताब्दी में एक ही पुरूष हुआ है और वह था गांधी ।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी गांधी जी की मंशा अनुसार कांग्रेस अपने अधिवेशनों की कार्रवाई हिन्दी में करती थी । इस सम्पर्क भाषा के माध्यम से पूरा देश एकता के सूत्र में बँधा था। तब हिंदी को लेकर कोई विवाद या राजनीति नहीं थी। भाषा-विवाद का विष तो बाद में फैला । राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार का इतिहास भारत के स्वतंत्रता संग्राम के समांतर है। जिस प्रकार गांधी के व्यक्तित्व को समझे बिना आजादी का इतिहास नहीं समझा जा सकता, वैसे ही गांधी के योगदान को समझे बिना हिन्दी के आंदोलन को भी ठीक से नहीं समझा जा सकता । भाषाविदब स्व. मगनभाई देसाई ने । 'हिंदी प्रचार मुवमेंट' नामक अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक में लिखा है – 'भारत में हिंदी-प्रचार आंदोलन का इतिहास मुख्यतः गांधी जी के इस दिशा में किए गए प्रयासों का ही इतिहास है।' गांधी जी की भाषिक मान्यताओं के पीछे लोक-संग्रह के संतुलन का भाव था। लोक भाव को अक्षत और अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होंने पहले जातीय संस्कारों और अपनी बोली-भाषा को जानना जरूरी बताया और फिर सामाजिक-राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए हिन्दी को जानने-समझने का सुझाव दिया । वे मातृभाषा और राष्ट्रभाषा को भारत राष्ट्र के दो नेत्रों के रूप में देखते थे। माना कि आरंभ में नेहरू जी और गांधी जी हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे, पर बाद में गांधी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी और उसे लिखने के लिए देवनागरी लिपि को न केवल स्वीकार किया बल्कि उसके लिए पैरवी भी की।

सन 1918 में इन्दौर में सम्पन्न अ.भा. हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के सभापति पद से बोलते हुए गांधी जी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का आह्वान किया था । अपने इस संकल्प को साकार करने के लिए उन्होंने इन्दौर से ही अपने पुत्र देवदास गांधी, पं. हरिहर शर्मा, स्वामी सत्यदेव और ऋषिकेश शर्मा को दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए भेजा था। 1935 में इन्दौर में सम्पन्न ऐसे ही अधिवेशन के सभापति भी गांधी जी थे और वहीं से उन्होंने हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग का शंखनाद फूंका था । स्वदेशी की मांग में हिन्दी को जोड़ने में गांधी का विचार आकस्मिक नहीं था । जानते थे कि गाँव के किसान, मजदूर और आमजन की माँगें हिन्दी में ही उठाने पर कारगर सिद्ध होंगी । 15 अटूबर 1917 को भागलपुर में छात्र सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा था 'मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह देश-भक्त कहलाने योग्य नहीं है।'

हिंदी में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, व्यवसाय आदि के लिए उपयुक्त शब्दावली न होने की स्थिति से भी गांधी जी परिचित थे। न्यायालयीन बहसों और फैसलों से गरीबजन को वंचित नहीं रखना चाहिए। इस आक्षेप के उत्तर में गांधीजी ने कहा

(पृष्ठ क्र. 30 पर...)

उच्च शिक्षा में हिन्दी – दशा और दिशा

डॉ. मनोज श्रीवास्तव – सागर

भाषायें न केवल संग्रह का माध्यम होती हैं वरन वे किसी समुदाय की पहचान संस्कृति संस्कारों की संवाहक भी होती हैं। एक भाषा के रूप में हिन्दी न सिर्फ भारत की पहचान है, अपितु हमारे जीवन मूल्यों परम्परा और इतिहास की सच्ची संवाहक, संप्रेक्षक और परिचायक भी है। आज हिन्दी को लेकर जागरूकता का वातावरण बन रहा है। भारतीय संदर्भ में जब राष्ट्रवाद का भाव चिंतन के केन्द्र में हो तो हिन्दी की प्रासंगिकता स्वयमेव परिलक्षित होती है। यूँ तो देश में हिन्दी को स्थापित करने अनेक आंदोलन हुए लेकिन प्रत्याशित परिणाम फिर भी न मिले। कारण कई हो सकते हैं लेकिन मूल में अंग्रेजी के प्रति बंधप्रिय होता रहा। अंग्रेजी के बौद्धिक पहलुकों का तर्क शास्त्र मझबूत रहा। हैरानी की बात है कि देश में 10% लोग ही अंग्रेजी बोलते हैं जबकि हिन्दी 44% आबादी की मातृ भाषा है। यह आंकडा उन दिनों का है जब जनगणना 2011 हुई थी। आज हम अधिकृत रूप से प्रतिशत में बात नहीं कर सकते। यद्यपि मनन इस तथ्य को लेकर हुआ कि हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का आधार कहाँ है? तर्क प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा को लेकर भी आते रहे अनवरत यह सोच आज भी है।

आइये, हम उस दिशा और दशा पर दृष्टिपात करते हैं जो हिन्दी की उच्च शिक्षा के संदर्भ में देखती है। एक लम्बा इतिहास है जब उच्च शिक्षा में हिन्दी की उपादेयता और प्रासंगिकता पर चर्चा होती रही है। विभिन्न माध्यमों ने पक्ष–विवक्ष में अपने सवाल उठाये अनेक बुद्धिजीवियों संस्थानों और सरकारों में गहन मंथन भी हुआ किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो उच्च शिक्षा में हिन्दी का प्रयोग हमें आशावाद की ओर ले जाता है। प्रयास भले ही मंद गति से हुए लेकिन इस दशक में उच्च शिक्षा के प्रयोग सार्थक और विस्तारित होते नजर आ रहे हैं। **NEP** 2020 हिन्दी को उजास देने का संबल बनेगी। ऐसा माना जा सकता है। इस देश में पहली बार क्रांतिकारी ढंग से किसी शिक्षा प्रणाली पर मंथन हुआ है। प्रत्येक वर्ग के विचारों को आमंत्रित किया। चिंतन हुआ। जिन घटकों पर बौद्धिक क्रिया–प्रतिक्रिया हुई उनमें उच्च शिक्षा में हिन्दी की व्यापकता भी थी। जहाँ **UNO** ने 2019–29 को मातृभाषा दशक घोषित किया वही दुनिया के दूसरे देशों के संदर्भों से जोड़कर हमने अपने को देखा हम भाषा के स्तर पर समृद्ध हैं। 2011 के आंकडे स्पष्ट करते हैं कि यहाँ 19500 भाषायें बोलियाँ अस्तित्व में हैं किन्तु 15% भाषायें विलुप्ति के कगार पर हैं। इस भाषाओं के बोलनेवाले 1000 से कम बचे हैं। 121 भाषायें ही है जिन्हें बोलनेवालों की संख्या 10,500 से अधिक है। यूनेस्की 6500 भाषाओं की बात करता है। हमारा भारतीय भाषा संस्थान भाषाओं के प्रति न केवल संवेदनशील है वरन हमें संसार की भाषाई परिस्थितियों से अवगत कराता है। यह संस्थान हिन्दी को उच्च स्तर पर व्यापकता देने, सतत प्रयासरत रहा है। अन्य देशों का अगर हम तुलनात्मक विश्लेषण करें तो अनुभूत करते हैं कि हम अपनी मातृभाषा हिन्दी को वह सम्मान नहीं दे पाये जो अन्य देशों ने अपनी मातृभाषा को दिया। यूनेस्को के महानिर्देशक इरिना वोकोबा ने कहा भी 'एक नये वैश्विक शिक्षा एजेंडा के साथ जो सभी के लिये गुणवत्ता समानता और आजीवन सीखने को प्राथमिकता देता है शिक्षण और अधिगम में मातृभाषा के उपयोग और सम्मान को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

उच्च शिक्षा में हिन्दी शिक्षण के उद्देश्यों को लेकर प्राय: मतभेद होता है। जैसे इसका स्वरूप क्या हो अगर हिन्दी शालेय स्तर पर भावोन्मुख हो तो उच्च स्तर पर उसे साहित्य मूलक होनी चाहिये या फिर हिन्दी साहित्य से इतर प्रयोजनमूलक की भूमिका में हो। अब तक हिन्दी को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। स्नातक स्तर में अन्य विषय समूह के साथ मात्र एक विषय। विश्वविद्यालयों विशेषकर राज्यों के विश्वविद्यालयों में वे ही तय करते हैं कि हिन्दी शिक्षण कितना और किस स्तर पर दिया जावे। उनसे मात्र वातावरण बनाने का आग्रह किया जा सकता है किन्तु यह उनके लिये बाध्यकारी नहीं है। विश्वविद्यालय अनुदान

आयोग ने बताया था (30/8/3008) कि हिन्दी भाषा को प्रोत्साहित करने के लिये एक समिति बनाई गई थी जिसने कुछ सुझाव दिये थे। सुझावों में से प्रमुख सुझाव यह है कि तकनीकि विषय में लेखकों अनुवादकों का चयन तथा विदेशी छात्रों को हिन्दी पढाने के लिये विश्वविद्यालयों को बढावा देने के लिये प्रोत्साहित किया जावे किंतु विडम्बना है कि आज भी अधिकांश विश्वविद्यालयों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी विषय ही नहीं है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी विभिन्न विषयों पर मानक हिन्दी पुस्तक नहीं है। अगर हिन्दी विषय के रूप में भी है तो उसकी विषय वस्तु को लेकर विश्वविद्यालयों और अनुदान आयोग सरकार और समाज में वांछित सामंजस्य नहीं हो पाता। भारतीय उच्च शिक्षा संस्थान (**HECI**) विद्यार्थियों की समझ विकसित करने संज्ञानात्मक तनाव को कम करने के लिये हिन्दी की उपयोगिता महसूस जरूर कर रहे हैं। प्रमाण सम्मत है कि मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों ने अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक अधिगम स्तर प्राप्त किया है। आज जब हम दुनिया के अन्य देशों की भाषाई समझ और स्वीकार्यता देखते हैं तो आश्चर्य होता है। अनेक देश हैं जो अपनी भाषा को उच्च स्थान देकर ही वर्ताव करते हैं। उनका समूल अध्ययन अध्यापन ढांचा अपनी भाषा से बंधा होता है। भारत में अभी वह नहीं हो पाया। इक्कीसवी सदी के मुहाने पर आकर भी अभी हिन्दी अपना स्थान उच्च शिक्षा में वैसा न बना पाई जिसे हम पर्याप्त कह पायें अंग्रेजी का ग्लैमर हमारी अत: चेतना में गहरे तक जो पैठा है। कई-कई अवसरों उच्च शिक्षा में हिन्दी के बढावा देने पर हमारे तथाकथित बुद्धिजीवियों ने खुलकर विरोध भी किया परिणाम बात आगे न बढ़ पाई। विभिन्न आयोगी समितियों की रिपोर्ट हिन्दी के पक्ष में अनुशंसित होने के बावजूद भी व्यवहार में न पाई। आजादी के बाद की एक वही विडम्बना यह रही कि भारतीय भूगोल ने भाषाओं का भी अपना क्षेत्र रच दिया।इसका परिणाम यह हुआ कि क्षेत्रीय भाषाओं का द्वंद्व शुरू हो गया। देश में ही भाषाई आन्दोलनों ने बड़ा रूप ले लिया। एक सूत्र में बांधने वाली हिन्दी ठिठक कर रह गई।अंग्रेजी उच्च शिक्षा में लाड़ली बनती गई।

अब अतीत से सबक लेकर अपनी अस्मिता के प्रश्न पर और विद्यार्थियों में अधिगम स्तर का बढ़ाने के तर्कों के साथ हिन्दी के प्रति एक चेतना एक समग्र दृष्टिबोध आवश्यकता और प्रयास ध्वनित हो रहे हैं जो उच्चशिक्षा में हिन्दी के विस्तार के लिये वातावरण तैयार करेंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की उदारता, निज़ी विश्वविद्यालयों की इच्छाशक्ति और शिक्षाविदी का 'बौद्धिक' इस ओर अग्रसर है।

सुखद बात यह है कि आज दुनिया विज्ञान और प्रौद्योगिकी के जिस उन्नति के दौर में है, भारत भी उसमें पीछे नहीं रहा। हमारे देश के उच्च संस्थानों ने निमित्त क्षेत्रों में अपनी उपलब्धियों का डंका बजाया। आज के समय को हम प्रौद्योगिकी विज्ञान का युग सम्बोधित कर रहे हैं। सुखद यह है कि हमारे प्रौद्योगिकी संस्थानों और चिकित्सा के विभिन्न पाठ्यक्रमों में हिन्दी को स्थान मिलने लगा।इन विषयों की पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद किये जाने का काम बड़े स्तर पर और बड़े मनोयोग से हमारे मनीषियों के द्वारा किया जा रहा है। अब पाठ्यक्रम को हिन्दी में अध्ययन-अध्यापन की सुविधा हमारे उच्च शिक्षा के इन केन्द्रों में सुलभ होगी इससे न केवल हमारी इन पीढियों को हिन्दी ज्ञान विकसित होगा बल्कि हिन्दी टर्म में शब्दों को ग्राह करने की क्षमता विकसित होगी। ज्ञान के नवीन द्वार अब इस माध्यम से खुलेंगे जिन अंग्रेजी शब्दों को ही हम जानते समझते थे। हिन्दी अब उनका रूपान्तरण प्रस्तुत करेगी यह हिन्दी के लिये सार्थक उपक्रम है। विज्ञान और तकनीक के सन्दर्भों में हिन्दी की चाल गति पकडेगी। अब साहित्य से परे ज्ञान-विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति बनने लगी है। इसका बढ़ता प्रयोग कृषि स्वास्थ्य शिक्षा और तकनीक में होकर आमजन तक पहुंचेगा। वर्तमान में हिन्दी भाषा में लगभग 350 हिन्दी विज्ञान पत्रिकायें देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों, शिक्षा केन्द्रों शोध संस्थानों और संगठनों से प्रकाशित हो रही है।

यद्यपि आजादी के इतने वर्षों के बाद भी हिन्दी को उच्च शिक्षा में वह स्थान न मिलना जो मिलना चाहिये था एक त्रासदी है किन्तु अब सम्मत: आशा की जा सकती है कि हिन्दी की व्यापकता होगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रबोध, विद्वानों और शिक्षाविद्ों का हिन्दी के प्रति दृष्टिकोण एक सार्थक पहल है। संभव है आनेवाले समय में उच्च शिक्षा में पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद का काम भी बडे स्तर पर होगा। वैसे भी अब हिन्दी की प्रासंगिकता पर भी सार्थक विमर्श उच्च स्तर पर हो रहे हैं।

हिंदी का अनूठा सफर

गरिमा मिश्र, पुणे

हाल ही की अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट में आया था कि दुनिया भर के युवाओं में पढ़ने की आदत और पढ़ने से मिलने वाला आनंद लगातार कम होता जा रहा है। पिछले करीब दस साल से ऐसे ही आँकड़े और रिपोर्ट सामने आती रही हैं। जब भी मैं ऐसी कोई रिपोर्ट पढ़ती हूँ, मन में चिंता तो उठती है ही, साथ ही एक उदासी भी। खासकर इसलिए क्योंकि मैं खुद कई सालों से पढ़ने की शौकीन रही हूँ।

पत्रकार के रूप में अपने पूर्व पेशे में, अपने वर्तमान पेशेवर जीवन में और ब्लॉग लेखन में मैंने अधिकतर अंग्रेज़ी का इस्तेमाल किया है, लेकिन जब बात कविता लिखने की आती है, तो मेरी लगभग 90 प्रतिशत कविताएँ हिंदुस्तानी में होती हैं। इसलिए यह देखना दुखद लगता है कि लोग पढ़ना कम कर रहे हैं और किताबें, कविताएँ धीरे-धीरे भूले-बिसरे गीतों जैसी लगने लगी हैं।

अक्टूबर 2024 में मैंने पुणे में अपने कविता-समूह 'कविता**KAFE**' की शुरुआत की। मेरा बस एक ही उद्देश्य था - हिंदी में कविताएँ लिखने और पढ़ने वालों को एक छोटा सा मंच देना और इस भाषा को रोज़मर्रा की जिंदगी में वापस लाने की कोशिश करना। शुरू में मैंने लोगों की प्रतिक्रिया को लेकर कोई बड़ी उम्मीद नहीं रखी थी, लेकिन यहाँ तक जो हुआ, वह मेरे लिए खुशी की बात है ।

अब तक हम लगभग 15 कार्यक्रम कर चुके हैं, और हर बार 15-20 लोग हिंदी में लिखी अपनी कविताएँ साझा करने बैठते हैं। यह देखना अजीब भी है और खुश करने वाला भी कि ऐसे दौर में भी लोग अपनी रचनाएँ ज़ोर-शोर से सुनाने आ रहे हैं।

पुणे में कविता**KAFE** के साथ-साथ और भी कई पोएट्री ग्रुप्स सक्रिय हैंह्व जैसे पोएट्स ऑफ पुणे, कॉम्यून पुणे. ईश्वर माइक एंड म्यूज, सुमरात्री पोएम नज़म और हम, तथा अन्य कई समूह। इन सभी के कार्यक्रम शहर के अलग-अलग हिस्सों में आयोजित होते हैं।

इसका सीधा लाभ यह हुआ है कि पुणे में रहने वाले काव्य-प्रेमियों को भाग लेने के लिए दूर-दूर तक सफर नहीं करना पड़ता। उदाहरण के तौर पर, बानेर या औध में रहने वाले कवि प्रेमी अपने ही इलाके में हो रहे कार्यक्रमों में भाग लेकर कविता प्रस्तुत कर सकते हैं; उन्हें कल्याणी नगर, विमान नगर अथवा कोरेगांव पार्क तक जाने की आवश्यकता नहीं होती।

इसी तरह, पुणे के हर इलाके में रहने वालों के लिए विकल्पों की कोई कमी नहीं है । इस प्रकार, हिंदी की लोकप्रियता को एक नया रूप और नई पहचान मिल रही है।

मेरे अवलोकन के अनुसार, हिंदी को लेकर आए इस बदलाव के पीछे सोशल मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका है। लिखने वाले लोगों में सिर्फ युवाओं में ही नहीं बल्कि हर आयु वर्ग के व्यक्तियों में यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उनकी रचनाएँ केवल डायरी या मोबाइल तक सीमित न रहें, बल्कि बड़े मंत्तों पर भी प्रस्तुत और सराही जाएँ।

किसी भी कविता कार्यक्रम में अक्सर प्रतिभागी आयोजक से पहले ही पूछते हैं- क्या मेरा वीडियो बनेगा? क्योंकि वे उसे अपने इंस्टाग्राम यूट्यूब या फेसबुक पर शेयर करना चाहते हैं। अमर आयोजक कह दे कि वीडियो नहीं बनेगा, तो ज्यादातर लोग भाग लेने से भी मना कर देते हैं।

आज लगभग सभी पोएट्री ग्रुप्स प्रतिभागियों को उनके प्रदर्शन का वीडियो देते हैं। ऐसे में यह कहना मुश्किल है कि लोग कविता लिख रहे हैं क्योंकि उन्हें भाषा से सच्चा प्यार है, या क्योंकि उन्हें लाइक, फॉलोअर और कमेंट्स चाहिए। पर मेरा मानना है कि जब तक यह रुझान हिंदी की दिशा में चल रहा है, तो यह अच्छा ही है। हाँ, कभी-कभार औसत या कमज़ोर रचनाएँ भी सामने आती हैं, लेकिन यह भाषा को खामोश छोड़ देने से बेहतर है।

कविता**KAFE** की यात्रा के दौरान हमने यह भी महसूस किया कि हमारा उद्देश्य सिर्फ लोगों को हिंदी में कविताएं लिखने और सुनाने के लिए प्रेरित करना नहीं था, बल्कि उन्हें पढ़ने की ओर भी ले जाना भी उतना ही ज़रूरी था। नवंबर 2025 में हमने अपनी पहल किताबों से मुलाकात, शब्दों से बात' के तहत लेखक - अभिनेता मानव कौल की किताबों पर चर्चा का आयोजन किया।

मैंने इस बार भी ज़्यादा उम्मीद नहीं रखी थी. लेकिन लगभग 20 साहित्यप्रेमी जुटे कई लोग किताबें लेकर आए और अपने-अपने विचारों को साझा किया। कुछ लोगों ने तो

बताया कि यह उनकी पहली बार थी जब वे खुद की हिम्मत बटोरकर लेखक – चर्चा में शामिल हुए।

इसके बाद एक और महत्त्वपूर्ण कदम था – रश्मिरथी, जो रामधारी सिंह दिनकर' की कालजयी रचना है. उस पर चर्चा आयोजित करना। शुरुआत में मेरे मन में यह प्रश्न था कि लगभग 70 वर्ष पहले लिखे गए इस महाकाव्य पर पुणे में कितने लोग आएँगे ।

लेकिन यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि लगभग 30 लोग इसमें शामिल हुए – 11 साल के बच्चों से लेकर 70 वर्ष तक के प्रतिभागियों ने न केवल उपस्थिति दर्ज की, बल्कि गहन चर्चा और विचार–विमर्श में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया।

हमने एक और दिलचस्प पहल भी की। प्रतिभागियों को हिंदी थिएटर की दुनिया से जोड़ने के उद्देश्य से, एक प्रयोग के तौर पर हमने उभरते हुए लेखकों और कवियों को साथ लेकर दो हिंदी नाटकों– शासदी और हमारे राम– का मंचन देखने का आयोजन किया। काफी लोग इस पहल से दिल से जुड़े और इस अनुभव का हिस्सा बने।

भले ही आंकड़े के अनुसार आज युवाओं में पढ़ने की आदत में कम हो रही है, लेकिन मेरा मानना है कि कविता और हिंदी की जुबानी व्यक्ति–व्यक्ति के बीच जुड़ी हुई है। छोटे–छोटे मंच और ग्रुप्स लोगों को फिर से लिखने, सुनने और पढ़ने की ओर खींच रहे हैं।

मुझे लगता है कि हवा सही दिशा में बह रही है। हमें बस इसके साथ बहना है । यह गति तभी बनी रहेगी जब अधिक से अधिक लोग लिखें और कविता से जुड़े कार्यक्रमों में भाग लें। साथ ही साथ जो लोग लिख नहीं पाते, वे सुनने आएँ और लेखकों का उत्साह बढ़ाएँ, ताकि यह विश्वास बना रहे कि हिंदी सिर्फ एक भाषा नहीं बल्कि एक जीवंत और सजीव संस्कृति है।

===

(पृष्ठ क्र. 7 से आगे....)

आज़ादी: अर्थ और आयाम

आज भी हमारी आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती, एक बहुत बड़ी संख्या आज भी मूलभूत शिक्षा से वंचित है। सामाजिक वैषम्य सर चढ़ के बोल रहा है, मज़हब के नाम पर हम एक–दूसरे का सर तन से जुदा करने पर उतारू हैं, जाति है जो जाती ही नहीं है। तिस पर तुर्रा यह कि हम आज़ाद हैं। बताइये, इससे बढ़कर विडम्बना भला और क्या हो सकती है?

हम सबको अपनी सोच में आमूल परिवर्तन करने की नितांत आवश्यकता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि जब हम सबकी सोच समष्टिगत रूप से स्वतंत्र होगी तो परिणाम भी सकारात्मक होंगे। सोच से मेरा अभिप्राय गजदंत मीनार में बैठकर अकेले व्यक्ति की विचार–विलसिता नहीं है। याद रहे, एकाकी सोच की परिणति भी एकाकी होती है। समष्टिगत और परिणत विवेक जो हर दृष्टि से स्वतंत्र और समीचीन हो, हमें स्वतंत्र कर सकती है।

स्वतंत्रता विचारों के धरातल पर एक क्रांति के रूप में उभरनी चाहिए। जब ऐसा होगा तभी आसमान के सीने को चीरा जा सकेगा। हमें आजादी के नव संदर्भ और नए मुहावरे गढ़ने होंगे। डॉ. राममनोहर लोहिया कहते थे कि आज़ादी के अर्थ और संदर्भ युग के अनुरूप बदलने चाहिए। एक छोटा–सा उदाहरण इस कथन की भली–भाँति व्याख्या करता है। सन् 2000 तक भी महिलाएँ अध्यापिकाएँ, उद्घोषिकाएँ या ज़्यादा से ज़्यादा डॉक्टर बनती थीं। आज स्थिति बिलकुल अलग है। आज स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर युद्धक्षेत्र में रणनीतियाँ तैयार कर रही हैं। नाना क्षेत्रों में वे अपनी सशक्त मौजूदगी उकेरती दिख रही हैं। दूसरे शब्दों में, उनकी स्वतंत्रता का दायरा विस्तीर्ण और व्यापक हुआ है।

जब हर व्यक्ति को हर कार्य करने और हर ढंग से सोचने की आज़ादी प्राप्त होगी, तभी सही अर्थों में आज़ादी का अभ्युदय होगा। स्वतंत्रता के पावन अवसर पर मैं पुन: देशवासियों से अनुरोध करता हूँ कि वे अपनी सोच में क्रांति लाएँ और यह न भूलें कि कथित देशप्रेम भी आपकी सोच की आज़ाद उड़ान में बाधक साबित होता है। देश से प्यार करें लेकिन दृष्टि में व्यापकता लाते हुए संपूर्ण मानवता के बारे में भी किंचित् सोचें। आखिर समस्त संसार हमारा परिवार है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का जयघोष भी प्राच्य संस्कृति की ही देन है।

अपनत्व से भरी हिंदी (संस्मरण)

डॉ. जया आनंद, मुंबई

हिन्दी भाषा एक ऐसी भाषा है जो मिठास से रची पगी है और यही मिठास सबको अपनत्व की डोर से बाँध लेती है। मैं लखनऊ की रहने वाली जहां की उर्दू मिश्रित हिन्दी मिश्री सी ही लगती है यानी अपनी नजाकत और नफासत के साथ वक्ता के व्यक्तित्व को सहज ही आकर्षण का केंद्र बना देती है। ...बात उनदिनों की है जब मैं विवाह के उपरांत उत्तर परदेश की राजधानी लखनऊ से सीधे गुजरात के शहर बड़ोदरा पहुंच गयी। बड़ोदरा एक प्यारा सा शहर,जलेबी, फाफड़े , उनधियों, ढोकलो का शहर । वहां की सभी दुकानें, रेस्टोरेंट के नाम गुजराती में लिखे थे। मुझे लगा कि यहाँ लोग हिन्दी समझते होंगे या नहीं या हिन्दी के प्रति उनका अनुराग होगा! ...पर वहाँ दूसरे ही दिन घर की सहायिका ने अच्छी खासी हिन्दी में बात किया तो मुझे बहुत खुशी हुई। ''नैना बाई तुम इतनी अच्छी हिन्दी कैसे बोल लेती हो ...क्या उत्तर-प्रदेश की हो?'' मैंने उससे पूछा

''नहीं भाभी...मैं तो यहीं की रहने वाली हूं ...और हिन्दी तो हमारी अपनी ही भाषा है , बापू गांधी भी तो यही कहते थे ।'' मैं उसके उत्तर को सुनकर अवाक थी, हिन्दी के प्रति उसका स्नेह भाव विह्वल करने वाला था । हम दोनों को हिन्दी भाषा जोड़ रही थी । वहां अन्य लोग भी धाराप्रवाह हिन्दी बोलते । आपस में तो वे गुजराती में बात करते पर जब मैं उनसे हिन्दी बोलते हुए कुछ सामान मांगती या ऑटो वाले से कहती तो वे हिन्दी में ही उत्तर देते ।

अब बारी मेरी थी कि हिन्दी की सहोदरी भाषा यानी गुजराती को सीखा जाये। मैंने दुकानों पर लगे बोर्ड पढ़ना शुरू किया, नीचे अंग्रेजी या हिन्दी अनुवाद के द्वारा अर्थ समझ आने लगा। अनेक गुजराती गीत सीखे और फिर गांधी आश्रम जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गांधी जी की अपनी आवाज में उनके भाषण की रिकॉर्डिंग सुनी। उनके भाषणों में हिन्दी का प्रेम सुवासित हो रहा था ।हिन्दी के स्नेह की डोर से गुजरात का हरेक व्यक्तित्व आबद्ध था। उन गुजरातियों के मध्य कहीं भी परायापन नहीं महसूस हुआ। ये अपनापन मुझे हिन्दी भाषा के द्वारा प्राप्त हुआ।

वडोदरा में मैं गुजराती सीख ही रही थी कि मेरे पति के स्थानांतरण के कारण मुझे चेन्नई जाने का अवसर मिला यानी पुनः एक नए प्रांत में...।

चेन्नई तमिलनाडु की राजधानी, यहां के सबसे मुख्य इलाके 39; टी नगर 39; जिसे चेन्नई का हृदय भी कहते हैं, वहाँ एक सोसाइटी में हम सपरिवार रहने लगे। तमिलनाडु के विषय में तो बहुत प्रचलित था कि यहां के लोग हिन्दी से दूर ही रहते हैं और हिंदी का बहुत विरोध भी करते हैं। यहां के आसपास के लोग या तो तमिल में बात करते थे या फिर अंग्रेजी में। काम वाली बाई तो न हिंदी और न ही अंग्रेजी समझती तो उससे इशारों में बात समझाना पड़ता।

क्या सचमुच तमिलनाडु में हिंदी से स्नेह करने वाला कोई नहीं...! मन में आशंकाएं जन्म लेने लगी थीं, कहीं मन का एक कोना उदासियों से घिर रहा था पर शाम को ही जैसे उदासियों के बादल को चीर कर चाँद निकल आया। पति देव ने ऑफिस से आते ही 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के विषय मे बताया । ''ये है कहाँ?'' मैंने उत्सुकता से पूछा।

''अरे ! बहुत पास हमारी सोसाइटी से निकलते ही चौराहे के दायी ओर, मुश्किल से पांच मिनट का रास्ता...'' पति देव मुस्कुराते हुए बोले। मेरी खुशी मेरे पूरे चेहरे से छलक रही थी ।

दूसरे ही दिन मैं पांच मिनट का रास्ता तय कर के 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के परिसर में प्रवेश कर गयी। विशाल परिसर हरीतिमा से आच्छादित था। नारियल के लंबे- लंबे वृक्ष, पीपल के विशाल वृक्ष, सुव्यवस्थित ढंग से कटी हुई झाड़ियों से घिरा बगीचा और अपूर्व शांति। संपूर्ण वातावरण मन को विशांति दे रहा था। वहाँ की इमारत लाल रंग की दीवारों और सफेद रंग के किनारों से सुसज्जित थी । उसके अंदर प्रवेश करते ही गांधी जी की बड़ी सी पेंटिंग एक दीवार पर बनी थी। मैंने गांधी जी की पेंटिंग के आगे नमन किया और स्वागत काउंटर पर बैठे महानुभाव को अपना परिचय देते हुए हिन्दी प्रचार सभा के निदेशक के कक्ष का

रुख किया। वहां के निदेशक तमिल भाषी थे किंतु वे धारा प्रवाह हिन्दी बोल रहे थे। मैंने अपना परिचय दिया कि मैं भी हिन्दी से पीएचडी हूं और उत्तर प्रदेश लखनऊ से हूं तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा हिन्दी तो सबको जोड़ देती है। वहाँ की एक प्रोफेसर डॉ वैजयंती जी से भी परिचय हुआ,वे भी तमिल भाषी थी पर बहुत ही शुद्ध और प्रवाह पूर्ण हिन्दी में बोल रही थी। उनकी हिन्दी सुनकर तमिलनाडु में हिन्दी विरोध की बात सिरे से खारिज होती हुई मुझे महसूस हुई। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु आज हिन्दी के माध्यम से जुड़ गए थे। इस जुड़ाव को और भी प्रगाढ़ करने के लिए मैंने उनसे हिन्दी प्रचार सभा में अपनी सेवाएं देने की बात कही। उन्होंने बड़ी ही आत्मीयता से मुझे एक सप्ताह के बाद फोन पर सूचित करने का आश्वासन दिया।

बहुत व्यग्रता के साथ मैंने एक सप्ताह तक प्रतीक्षा की और फिर प्रतीक्षा सार्थक सिद्ध हुई। 'दक्षिण भरत हिन्दी प्रचार सभा' से फोन आया कि मुझे हिन्दी दूरस्थ परास्नातक (एमए)की कक्षाओं से संबंधित अंशकालिक सेवाएं देने का अवसर मिल गया है। विद्यार्थी से शिक्षक बनने का ग़्रह मेरा पहला अनुभव था। हिन्दी मुझे वो सब दे रही थी जिसका मैं सपना देखती थी।

अगले दिन साड़ी पहनकर मैं हिन्दी प्रचार सभा पहुंची।निदेशक जी से मिलकर उन्हें धन्यवाद दिया और अपने कार्य स्थल की ओर चल पड़ी। सर्वत्र हिन्दी ही हिन्दी प्रवहमान थी। हिन्दी के प्रति उनका नेह देख कर मन अपूर्व आनंद से भर रहा था। वहां का सुन्दर विशाल पुस्तकालय देख कर खुशी और भी दुगुनी हो गयी। मैंने अविलम्ब वहां की सदस्यता ग्रहण की और दो पुस्तकें पढ़ने के लिए घर ले आयी ।

'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'के निदेशक, प्रोफेसर, विद्यार्थी ,कर्मचारी सभी तमिल भाषी थे पर हिन्दी धारा प्रवाह बोलते थे। उनके हिन्दी प्रेम को देख कर मेरे मन में तमिल भाषा को सीखने की इच्छा जागृत हुई। अपनी भारतीय भाषाओं को सीखने से आपसी भाषाई प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। तमिल की गिनती, उसकी वर्णमाला सीखने के लिए मैंने अपनी कामवाली बाई की बेटी को गुरु बना लिया जो कि तमिल के साथ थोड़ी हिन्दी और थोड़ी अंग्रेजी भाषा भी जानती थी। एक से दस तक कि गिनती जैसे उन्न ,रेंड, मून, नाल, अंच, आर .... तमिल के रोज़मर्रा के अनेक शब्द सीखे जैसे दूध को पाल, दरवाजा को मुक, बच्चे को पापा, कान को काद, थाली को थट्ट आदि।

मैं हिन्दी प्रचार सभा जा कर अपना तमिल ज्ञान उन्हें बताती, वहाँ सभी लोग बहुत प्रसन्न हो जाते। वास्तव में हिन्दी हम सब के मध्य सेतु का काम कर रही थी। हिन्दी अपनी छोटी बहनों को सदैव साथ ले कर चलती आयी है। अहिंदीभाषी प्रांतों में रहते हुए निश्चय ही हम हिन्दी भाषियों को वहाँ की भाषा अवश्य सीखने का प्रयास करना चाहिए और शिक्षा नीति के अंतर्गत हिदी भाषी राज्यों में एक क्षेत्रीय भाषा सीखना अनिवार्य करना चाहिए। इससे हिदी और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच माधुर्य पनपेगा।

थोड़े ही समय पश्चात पुनः हमारा स्थानांतरण एक और अहिंदीभाषी प्रांत में हो गया। उसकी गाथा फिर कभी...। यों दक्षिण भाषा हिन्दी प्रचार सभा में कुछ महीनों के लिए अपनी सेवाएं देना अत्यंत सुखद रहा। वहाँ के निदेशक जी ने कहा कि आपका महात्मा गांधी के प्रति कोई ऋण होगा इसलिए आपको ग़्रह सौभाग्य मिला कि आप यहां कार्य कर सकीं।

निश्चय ही हिन्दी भाषा के स्नेह और अपनत्व से सभी बिंध जाते हैं। हिन्दी भाषा सभी भाषाओं के साथ सामंजस्य बिठाती हुई सबको जोड़ती चलती है। हिन्दी ने ही मुझे गुजरात और तमिलनाडु जैसे अहिंदीभाषी प्रांतों में आत्मीय क्षण दिए। हमारी हिन्दी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। हिन्दी भारत माँ के माथे की बिंदी है। भारत माँ का मस्तक इस हिन्दी की बिंदी से सदैव जगमगाता रहे यही शुभेच्छा है।

ज्ञानांश

देह एक रथ है, इन्द्रिय उसमें घोडे, बुद्धि सारथी और मन लगाम है। मैं स्त्री हूँ या पुरूष, काला या सफेद, मेरे शरीर की मुद्रा, सभी अंग ठीक हैं, मेरा जन्म मेरे हाथ में भी नहीं था, लेकिन जो मिलता है उसका ख्याल रखना, उसकी उचित देखभाल करना मेरे ऊपर है। भले ही तुम बाहर से संयम बरतते रहो, मन में कलुष भरा हो, विचार गंदे हों तो वह रोगी बनेगा ही।

– संत ज्ञानेश्वर

पुणे में प्रथम हिंदी प्रचारक

स्व. पं. ग. र. वैशंपायन

डॉ. सत्येंद्र सिंह, पुणे

स्व. पं. ग. र. वैशंपायन अर्थात् पंडित गणेश रघुनाथ वैशंपायन, भारत के एक ऐसे हिंदी प्रेमी थे कि जिन्होंने काम तो किया पूरे भारत में परंतु हिंदी के प्रचारका श्रीगणेश किया पुणे महाराष्ट्र से और महाराष्ट्र में हिंदी मराठी के सेतु बने। उनका जन्म 7 जनवरी 1892 को नासिक जिले के येवला तालुका के नागडे नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता पं. रघुनाथ वैशंपायन अध्यापक थे और वे जहाँ जहाँ जाते, पुत्र गणेश, जिनका घर का नाम बाबू था, उनके साथ-साथ जाते और वहीं उनकी पढाई मराठी माध्यम से होती। उन्होंने नासिक हाई स्कूल से अंग्रेजी की शिक्षा ग्रहण की और सोलह साल की उम्र में एस.एफ. की परीक्षा पास कर ली।

एस.एफ. का मतलब महाराष्ट्र सरकार अर्थात तत्कालीन बाम्बे प्रेसीडेंसी की स्कूल फायनल परीक्षा। उस समय एस.एफ. एक महत्वपूर्ण मैट्रिक स्तरीय परीक्षा होती थी, जिसे उत्तीर्ण करने के बाद छात्रों को सरकारी नौकरी अर्थात् क्लर्क केरूप में नौकरी मिल जाती थी। परंतु गणेश का मन पढाई में नहीं लगता था। उनके पिता ने कहा कि उसे कानून की पढाई की तैयारी करनी चाहिए तो गणेश ठाणे में अपने चाचा के पास भाग गए, जो सावरकर के मित्र समूह में थे और यूरोपियनों को पसंद नहीं करते थे। अंततः एक पुलिस अधिकारी ने गणेश रघुनाथ वैशंपायन को जबरदस्ती सरकारी नौकरी में धकेल दिया और वे 25 रुपये प्रति माह पर सब-पोस्टमास्टर बन गए। पोस्ट ऑफिस में काम करते हुए वे वायरलेस ऑपरेटर बन गए और उन्हें सीमाप्रांत का सूबेदार टाइटल मिला। उनकी सैलरी बढ़कर 400 रुपये महीने हो गई।

पं. ग. र. वैशंपायन हृदय से क्रांतिकारी थे और उन्हें अंग्रेजों की गुलामी पसंद नहीं थी। उन्होंने कुछ पठान विद्यार्थियों को हिंदू धर्म की दीक्षा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सीमा प्रांत से वे अहमदाबाद आए और बाद में उनका ट्रांसफर मुंबई के सांताक्रूज़ में हो गया। वे जहाँ भी रहे,क्रांतिकारियों के संपर्क में रहे। 1921 में जब वे राजकोट में थे, तो ओपन हाउस में सावरकर की ज़ब्त की हुई किताब इंडियन वॉर ऑफ़ इंडिपेंन्डन्स् 1857 की टाइप की हुई कॉपी बनाने का काम चल रहा था और उसकी एक टाइप की हुई प्रति उनके भाई के पास सुरक्षित रही। यह पुस्तक प्रकाशित होने से पहले ही प्रतिबंधित कर दी गई। वैशंपायन जी ने बाद में उसका हिंदी में अनुवाद किया और उसका प्रचार व संरक्षण भी।

वैशंपायनजी अभिनव भारत के निष्ठावान सदस्य थे। 1930 में, उन्हें एक यूरोपियन को पिस्तौल से गोली मारने की साज़िश में शामिल होने के आरोप में गिरफ़्तार किया गया। सन् 1931 के लैमिंगटन रोड शूटिंग केस में, जिसे बाद में बॉम्बे शूटिंग केस के नाम से जाना गया,उनको मुख्य आरोपी बनाया गया। परिणामस्वरूप उन्हें कारावास भुगतना पड़ा। वैशम्पायन जी 4 मई 1931 को केस से पूरी तरह बरी हो गए। सरकार ने उन्हें नौकरी पर वापस रख लिया। 1934 में वे सेवानिवृत्त हो गए और उन्हें पेंशन मिलने लगी। पंडित वैशम्पायन उस समय 42 साल के थे।

वैशंपायन जी एक स्वतंत्रता सेनानी, वीर सावरकर के सहयोगी और भाषाविद् थे। वे चंद्रशेखर आजाद के भी सहयोगी रहे थे। वे सीमा प्रांत (नार्थ वेस्टफ्रंटियर) में सक्रिय रहे और हिंदी का प्रचार करते रहे । वे जहाँ भी जाते हिंदी का प्रचार करते, वहाँ की भाषा सीखते और राष्ट्रोन्नति की चिंता हृदय में लिए रहते। इसीलिए वे कई भाषाएँ जानते थे। महाराष्ट्र में हिंदी मराठी के सेतु के रूप में काम करते रहे। उनके मन में सदा रहता कि हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है और देवनागरी हमारी राष्ट्रलिपि है, जिसकी स्थापना में हमेशा संलग्न रहते। वैसे तो उन्होंने 1920-30 से हिंदी पढ़ाना शुरू कर दिया था, परंतु सेवानिवृत्ति के बाद 1934 में उन्होंने हिंदी प्रचार संघ रजिस्टर कराते हुए 21 जून 1934 को हिंदी प्रचार संघ की स्थापना की, जिसका उद्घाटन तिलक स्मारक मंदिर में महात्मा गांधी जी द्वारा किया गया, जो हरिजन यात्रा और ग्रामोद्योग के काम से पुणे में आये हुए ही थे। वैशंपायन जी महात्मा गांधी के अभिन्न अनुयायी थे औरजब भी गांधी जी पुणे आते तो वैशंपायन जी उनके साथ ही रहते। 28 जून 1934 को आयोजित सभा में हिंदी प्रचार संघ की नियमावली स्वीकृत की गई कि हिंदी प्रचार संघ

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग और हिंदी प्रचार समिति वर्धा से सम्बद्ध रहेगा और प्रचार संघ की कार्यसमिति व व्यवस्था समिति द्वारा उसका कार्य चलाया जाएगा।पं. ग.र. वैशंपायन हिंदी प्रचार संघ के प्रथम प्रधान मंत्री थे और श्री राघवेंद्र शर्मा प्रथम अध्यक्ष थे। हिंदी प्रचार संघ द्वारा पुणे में कई स्थानों पर हिंदी कक्षाओं का आयोजन होता था। (संदर्भ जयभारती जनवरी-जून1962)

22 मई 1937 को महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से पुणे में काका कालेलकरजी की अध्यक्षता में महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति का गठन किया गया जिसके पहले मंत्री पं. ग.र.वैशंपायन जी ही थे। यह समिति बड़े स्तर पर बनी थी और हिंदी प्रचार संघ को इस समिति में विलय कर दिया गया। महात्मा गांधी जी और काका कालेलकर ने उर्दू का पक्ष लेते हुए हिंदी का नाम हिंदुस्तानी करने के लिए कहा तो वैशंपायन जी जैसे संस्कृतनिष्ठ हिंदी के समर्थक इससे सहमत नहीं हुए और मुंबई में हिंदुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना होने पर पुणे में महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति दो भागों में विभाजित हो गई महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार सभा और महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रूप में। वैशंपायन जी गांधी जी के प्रबल समर्थक थे और गांधी जी जब भी पुणे आते ते वे उनके साथ रहते, परंतु हिंदुस्तानी पर मतभेद होने पर उन्होंने हिंदी प्रचार संघ को स्वतंत्र कर लिया और वैशंपायन जी के ही नेतृत्व में ही महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के रूप में ही कार्य करने लगा। यहाँ मेरा उद्देश्य महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का इतिहास बताना नहीं है अपितु वैशंपायन जी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डालना है क्योंकि वैशंपायन जी का हिंदी प्रचार भाषा तक ही सीमित नहीं था। वे चाहते थे कि हमारी भाषा, हमारी भूषा, आचार-विचार, हमारा शब्द तथा भाव सम्पत्ति भारत के योग्य हो। भारतीय समाज को वे सब बातों में स्वाधीन, स्वाभिमानी तथा स्वयंपूर्ण देखना चाहते थे। सन् 1940 में पुणे में आयोजित अखिल भारताय हिंदी साहित्य स्ममेलन के 19वें अधिवेशन में वे स्वागताध्यक्ष थे। 1941 में आयोजित 30वें अबोहर अधिवेशन में राष्ट्रभाषा परिषद के वे अध्यक्ष चुने गए। वैशंपायन जी के एक भाषण का अंश आज भी सबके लिए आलोक स्तंभ हैः यथा,

हिंदी को हम संस्कृतनिष्ठ हिंदी कहते हैं। क्योंकि हिंदी संस्कृत पृष्ठभूमि के कारण ही अन्य भारतीय भाषाओं के इतने पास आ गई है । और, इसीसे तो वह राष्ट्रभाषा का स्थान ले लेती है। कुछ सज्जन मानते हैं कि इससे हिंदी भाषा का विकास रुक जाएगा। किसी कमरे को अगर विशाल बनाना है तो क्या चारों दीवारों के गिरा देने से वह कमरा विशाल, विकसित हो जायेगा? बिल्कुल नहीं। हमारे राष्ट्रभाषा-मंदिर की चारों दीवारें सुरक्षित रखकर ही राष्ट्रभाषा का विकास होना चाहिए। हम किसी आवश्यक शब्द या विचार का बहिष्कार नहीं करते, किंतु उनको हमारी चार दावारों की मर्यादा में ही आकर रहना होगा। ये चार दीवारें हैंह्न1.विश्व-बंधुत्व, 2. मानवता, 3. राष्ट्र-भक्ति, और 4. आत्म-शक्ति। विश्वबंधुत्व के विचार से दुनिया के हर एक शब्द के साथ समन्वय करने का जतन हो सकता है। मानवता के नाते अति सूक्ष्म भावनाओं के लिए हर एक शब्द या विचार को आवश्यकता पर हम ग्रहण करेंगे, पर किसी राष्ट्र-विरोधी शब्द या विचार के लिए हमारे इस मंदिर में आगे का फाटक बंद रहेगा और आत्म-शक्ति के कारण नये-नये विचारों तथा शब्दों को उपजाते रहेंगे। ये हैं हमारे राष्ट्रभाषा-मंदिर की मर्यादाएँ। क्योंकि राष्ट्रभाषा परतंत्रता से छुटकारा पाने के लिए है, अंग्रेजी जादू को तोड़ने के लिए है, आत्म-गौरव तथा आत्म-श्रद्धा का राष्ट्रभाषा एक टोटका है। (संदर्भ-महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पुणे का मुख पत्र जय भारती, अक्टूबर 1953 अंक 10, संपादक पं.मु.डांगरे)

पं. ग. र. वैशंपायन जी ने हिंदी प्रचार के लिए पाठ्य पुस्तक सहित अनेक ग्रंथ लिखे। उन्होंने हिंदी मराठी के सेतु स्वरूप हिंदी मराठी व्यवहार कोष तैयार किया जो पुणे के अ. वि. गृह प्रकाशन (आज पुणे वि.गृह प्रकाशन), सदाशिव पेठ, पुणे द्वारा किया गया। इस शब्दकोष की तीसरी आवृत्ति पर पं. वैशंपायन जी की टिप्पणी त्रिपुरी पूर्णिमा 1871 को लिखी हुई है। चौथी आवृत्ति 1955 और पाँचवी आवृत्ति 1967 में प्रकाशित हुई। पहले संस्करण की तिथि नहीं मिल पाई है और न अब कोई अन्य आवृत्ति मिल पाई है।इस शब्दकोष में लगभग 30,000 शब्द हैं। 8 परिशिष्ट हैं यथा- 1.हिंदी म्हणी (कहावतें). 2.शासन शब्द-कोष, 3. शरीरावयव व त्यांचे रोग विकार, 4.कौटुंबिक व अन्य नातीं (रिश्ते), 5. मिश्र शब्द. 6. सेंद्रिय वाक्प्रचार, 7. सामान्य माहिती (जानकारी), रत्न, विद्या, कला, 8.पौराणिक व्यक्ति। दूसरा शब्दकोष है मराठी हिंदी शब्द संग्रह, जिसमें लगभग18000 है। इसके प्रकाशक भी अ.वि.गृह प्रकाशन है और प्रकाशन वर्ष 1949 है। इन दोनों शब्दकोषों को हिंदा प्रचार संघ/महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पुणे द्वारा 2020 में श्री ज. ग. फगरे जी के संपादकत्व में संशोधित संस्करण पुनर्मुद्रित कराये गए हैं। वैशंपायन जी ने वीर सावरकर की तत्कालीन प्रतिबंधित पुस्तक 1857 का

(पृष्ठ क्र. 27 पर...)

हिन्दी और जन माध्यम

दिलीप कुमार, बलरामपुर

आज के परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि हिन्दी बाजार की भाषा की दहलीज से निकलकर लोगों के जनमानस में स्थान बना पा रही है।

जब से संचार माध्यमों में यह चीज देखने में आई है कि हिंदी निरंतर अपना स्थान मजबूत करती जा रही है। तब से इस दिशा में हो रहे प्रयासों को बल देने की और आवश्यकता महसूस हो रही है।

ग्लोबल विलेज की टूटती अवधारणा के बीच लोग हिंदुस्तान को हिंदी से जोड़कर देखने लगे हैं। इसमें हिंदी के अखबार बहुत अच्छे से अपना काम कर रहे थे लेकिन प्रिंट की बढ़ती हुई लागत और उसमें बहुत भारी वर्क फोर्स के कारण धीरे-धीरे उनका लागत निकाल पाना मुश्किल होता चला जा रहा है। और यह भी एक बात तथ्यपरक है कि अखबार 24 घंटे बाद खबरें देते हैं, जबकि सोशल मीडिया पर खबरें तुरन्त आ जाती हैं। समय के अंतराल की इस चुनौती से जूझ पाना प्रिंट माध्यमों के लिये खासा मुश्किल हो रहा है, क्योंकि गति बहुत ही महत्वपूर्ण फैक्टर है। एक तो यह तथ्य यह भी महत्वपूर्ण है कि अखबार एक सीमित आबादी, सीमित प्रदेश तक सीमित होकर रहते हैं जबकि सोशल मीडिया में उस भाषा में पढ़ने वाले लोग दुनियाभर से आकर अपनी बातों को पढ़-कह सकते हैं।

हमारे दौर में जन-जन तक हिन्दी भाषा इसलिए पहुंच पा रही है, क्योंकि सबके उंगलियों के इशारे पर संचार का समुद्र गति करने लगता है।

मोबाइल या व्हाट्सएप के जरिए जो भाषा लोगों तक पहुंच रही है, वो भले ही बहुत शुध्द ना हो, लेकिन है हिंदी भाषा ही, अभी रोमन लिपि के जरिये आ रही है, धीरे -धीरे देवनागरी के जरिये आयेगी। जो चीजें सदियों में बिगड़ी हैं कुछ ही वर्षों में नहीं सुधर सकतीं।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे से सब होय।

अब आज बड़ा मुद्दा यह नहीं है कि हिंदी का विकास रुका हुआ है, बल्कि बड़ा मुद्दा यह है कि हिंदी का विकास में निरन्तरता तो आ गयी है लेकिन उसने अपना रंग -रूपबदल लिया है अब जैसे आप इस बात को देखिए कि हिंदी 24 घंटे बाजार की भाषा बनी हुई है। हर घड़ी हर सेकंड लोग हिंदी में संवाद कर रहे हैं लेकिन फिर भी लोग इस बात से हीन भावना से ग्रस्त हैं कि हिंदी एक छोटे तबके की भाषा बन के रह गई है। ऐसा कदापि नहीं है दुनिया भर में संवाद का माध्यम भारतीयों में हिंदी ही है। यहां तक कि अगल-बगल के देशों के लोग भी भारत के लोगों से संवाद हिंदी में ही करते हैं, तो इस जन-जन की भाषा को बाजार की भाषा ब कहना थोड़ा उपयुक्त नहीं होगा।

कुछ वर्ष पहले फिजी से एक अनिवासी भारतीय एवं बड़े उद्योगपति दिल्ली आये हुए थे, हवाई अड्डे से लेकर पंच सितारा होटल तक हर कोई उनसे अंग्रेजी में ही बात कर रहा था। वो बहुत हैरान हुए और लोगों से शिकायत की, कि वो हिंदी भाषी हैं और कम से कम भारतीयों को भारत में तो उनसे हिंदी में बात करनी चाहिये। ये हैरानी जब एक पब्लिक फोरम पर लोगों से बयां की, तब उन्हें बताया गया कि अंग्रेजी भारत में एक जुबान नहीं बल्कि क्लास है , लोग जन की बात तो करना चाहते हैं मगर भाषायी इलीट को छोड़ना नहीं चाहते।

एक एनआरआई के लिये ये बात बहुत हैरानी का सबब थी कि भारत में हिंदी जन की भाषा भले कही जाती है, मगर उसे दोयम दर्जे की जुबान बनाये रखने की कुत्सित सोच से पूरी तरह निजात अभी दूर की कौड़ी है।

लेकिन ये एलीट धरातल दरक रहा है और भारत में स्थानीय भाषा के उन्नयन की बातें तो हो रही हैं ।धीरे ही सही मगर हिंदी विरोधी आंदोलन पस्ती की दहलीज पर पहुंच चुके हैं।

अब अहिन्दी भाषी प्रदेशों में तालीम पूरी करने के बाद भी लोग सही संप्रेषण के लिये हिंदी सीख रहे हैं क्योंकि हिंदी जाने बिना काम चलता नहीं है। अंग्रेजी के बजाय एक-दूसरे से संपर्क की भाषा तो हिंदी बनती ही चली जा रही है।

अब देखने वाली बात ये है कि जन-जन तक पहुंच रही हिंदी कैसे इस बात से जूझ रही है कि उसको व्यापार की

भाषा बनाया जाए उसको संवाद की भाषा बनाया जा सके और हमें हिंदी के इस सहज संवाद की भाषा बनने की आ रही अड़चनों को दूर करना है।

हमारे विद्वानों, हमारे देसी व्यवसायियों के पास अपनी भाषा के जरिये समूचे विश्व को जोड़ने की संकल्पना बहुत पहले से थी। ये और बात है कि पश्चिम के विचारकों ने इस पर विधिवत चिंतन करके और अनेक ग्रन्थ लिख कर इसे एक मैनेजमेंट विषय का रूप दे दिया है और उसका क्रेडिट खुद ले उड़े।

जब ज्ञान का क्रेडिट पश्चिमी विद्वानों ने लिया तो हिंदी भाषा की सुगंध से पीछा छुड़ाने के लिये ये दर्शन,व्यापार और नीतिशास्त्र लातिन,अंग्रेजी और पुर्तगाली भाषाओं में बदल दिए।

दुबारा भारत में जब ये ज्ञान ग्लोबल विलेज–ग्लोबल लैंग्वेज के नारे के साथ लौटा, तो विश्व गुरु कहे जाने वाले देश में विश्व भाषा अंग्रेजी का लबादा ओढ़कर।

जीवन और व्यापार में भाषा का प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो जाता है. आम तौर पर हमारे देश के नीति–निर्माता (कार्यपालिका के लोग) मार्केटिंग विशेषज्ञ अंग्रेजी भाषा में इस विषय को मैनेजमेंट कॉलेजों से पढ़ कर आते हैं. मार्केटिंग के सन्दर्भ में उन्होंने मोटे मोटे अंग्रेजी ग्रंथों का अध्ययन किया होता है, जिनमें विदशों में प्रशासन और मार्केटिंग के उदाहरण दिए होते हैं। अतः जब वे अपने कार्य क्षेत्र में आते हैं तो उनमें से अधिकांश विदेशी रीति–नीति और मार्केटिंग परिदृश्य के प्रभाव में ही रहते हैं। सामान्यत उन्हें अपने संस्थान में उच्च अधिकारी भी अंग्रेजी प्रेमी मिलते हैं इसलिए एक सी ही सोच को बढ़ावा मिलता है।

लेकिन ये अंग्रेजी दां आयातित मॉडल कुछ वर्षों में ही बम बोल गया।

बाद में अनेक भाषा विशेषज्ञों ने इस देश की विशिष्ट भौगोलिक और भाषिक परिस्थितियों के अनुरूप सोचना शुरू किया तो खुद–ब–खुद एक बात उभर कर सामने आयी कि अगर इस देश में जन –जन तक पहुंचना है तो हिंदी भाषा का अधिकतम सहारा लेना ही होगा। यही वह भाषा है जिसके माध्यम से देश के ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचा जा सकता है। सुभाष चंद्र बोस ने भी कहा था कि देश को जोड़ेगी तो हिंदी ही।

हिंदी फिल्मों और अन्य भाषाओं की हिंदी में डब की गयी हिन्दी फिल्मों से इतर हिंदी का जो नया स्वरूप इस देश में अब उभर रहा है और जिसके पीछे यकीनन मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है वह यह है कि हिंदी अब इस देश में परम्परा ही नहीं वरन आधुनिकता का भी प्रतिनिधित्व करने लगी है। पुरानी पीढ़ी के साथ साथ कॉन्वेंट में पढ़ने वाली नयी पीढ़ी अपने को हिंदी में ज्यादा सहज महसूस करती है। रेडियो जॉकी, डिस्को जॉकी और विडियो जॉकी जो पहले अंग्रेजी में कभी कभी हिंदी का छौंक लगाते थे वो भी मात्र हास्य पैदा करने के उद्देश्य से, वे सब अब अपने प्रोग्राम हिंदी में पेश करने लगे हैं, भले ही उनकी हिंदी कॉन्वेंट स्टाइल की होती है, पर होती तो हिंदी ही है। और दिन–ब–दिन उनकी जुबान परिष्कृत भी होती जा रही है। पूरी तरह इंग्लिश से उतर कर लोग हिंग्लिस तक पहुंचे हैं। उम्मीद है अगला पड़ाव हिंदी भी इन सब माध्यमों में जल्द दिखाई पड़ेगा।

इन संचार माध्यमों में इस्तेमाल की जाने वाली हिंदी के व्याकरण और शब्दावली को लेकर कई हिंदी विद्वानों की असहमतियां जायज हैं मगर उन्हें इस बात को समझना होगा कि भाषा थोपी नहीं दिन–ब–दिन सुधारी जाती है।

इस माहौल ने उद्योग जगत और मीडिया को हिंदी का अधिक से अधिक इस्तेमाल करने पर विवश कर दिया है क्योंकि ये बात जाहिर हो गयी है कि नयी पीढ़ी भी हिंदी को ही अपना मानती है. अंग्रेजी को वह औपचारिकता की भाषा समझती है, ये ना सिर्फ हिंदी भाषा के प्रति बल्कि राष्ट्र एवं आत्म गौरव की तरफ बढ़ा एक महत्वपूर्ण कदम था।

यू ट्यूब औरटीवी चैनलों की देशव्यापी लोकप्रियता ने मार्केटिंग के लिए एक आसान माध्यम उपलब्ध करवा दिया है. विज्ञापनों के अलावा भी टीवी सीरिअल्स और वेब सीरीज में हिंदी शोज का ऐसा बड़ा कैनवास तैयार हो रहा है जो विश्व स्तरीय होगा।

नेटफ्लिक्स ने हाल ही में घोषणा की है कि वो अपनी आगामी हिंदी वेब सीरिज की परियोजना का स्केल हॉलीवुड की वेब सीरीज का स्तर का ही रखेंगे। दुनिया की सबसे ताकतवर जुबान ने तो हिंदी के प्रति अपना बड़ा दिल दिखाया है, अब देखना है कि भारत में हिंदी विरोधी कब अपनी झूठी जिद से पल्ला छुड़ा पाएंगे।

हिंदी फिल्मों के अलावा भी अनेक शोज में ऐसे भाषायी परिवर्तन दिखायी पड़ रहे हैं। सुखद हैरानी होती है देखकर जब मुम्बई में रशियन और ईरानी लोग हिंदी की कोचिंग पढ़ते दिख जाते हैं, अब उन्हें अनुवादक के जरिये डबिंग नहीं करनी, उन्होंने जो काम किया है उसकी डबिंग खुद

उन्हें हिंदी जुबान सीखकर, सहजता से करनी है। क्योंकि लोक भाषा से जुड़े बिना लोगों तक पहुंचना आसान नहीं है।

वैसे तो हमारे देश में अनेक भाषाएँ हैं, पर हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो एक दूसरे से जुड़ने का माध्यम बनी हुई है और वास्तव में वही संपर्क भाषा भी है। वैसे भी जिस भारत में दो भारतीय हिंदी में सफल संवाद नहीं कर पाएंगे, वहाँ अंग्रेजी में सफल संवाद और भाषायी सम्प्रेषण एक छलावा ही है और छल की आयु लम्बी नहीं हुआ करती।

अगर अखिल भारतीय स्तर पर कोई भी प्रचार अभियान चलाया जाना हो तो साधनों को देखते हुए उसे दो ही भाषाओं में अधिकाधिक चलाया जाना सुगम पड़ता है – इंग्लिश या हिंदी। अनेक अभियान अलग अलग प्रदेशों की भाषाओं में भी चले हैं पर ज़्यादातर मामलों में पूरे देश के स्तर पर अभियान चलाने के लिए कम्पनियां या सरकारें इन दोनों भाषाओं या दोनों में से एक का चयन करती हैं। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक अंग्रेजी के पक्ष में पलड़ा भारी था, पर जैसे – जैसे देश में राष्ट्रवाद मजबूत होता गया उसी के सापेक्ष हिंदी का पक्ष मजबूत होता गया।

जन की भाषा जन स्रोतों के जरिये लोगों तक पहुंच रही है। मीडिया में चलने वाले विज्ञापनों केपर हुए गहन शोध से इस पूर्व विदित तथ्य की पुष्टि हई है कि हिंदी में बने विज्ञापन लोगों में अधिक पसंद किये जाते हैं बल्कि उसके नतीजे भी उत्साहवर्धक रहे हैं। हिंदी की लोकप्रियता को स्वदेशी व्यवसायियों से भी जल्दी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने पकड़ा तभी तो हमारे सामने आया ठंडा मतलब कोका कोला, ये दिल मांगे मोर जैसे जुमले जनमानस की जुबान पर आसानी से चढ़ गए। क्योंकि ये क्लिष्टता के बजाय सहजता के पर्याय थे।

आर्थिक उदारीकरण के दौर से आर्थिक समृद्धि महानगरों के एकाधिकार से निकल कर छोटे शहरों, कस्बों और गाँव तक पहुंची। उद्योगपतियों को अपने माल सामान की बिक्री के लिए वहां के बाजारों में असीम संभावनाएं नज़र बढ़ती आबादी से मार्कटिंग में रोजगार के अपार अवसर पैदा हुए।

विशाल बाज़ार में मार्केटिंग के लिए दो ही रास्ते थे या तो वहां की स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करना या फिर हिंदी का, क्योंकि अंग्रेजी दां मॉडल विफल और प्रभावहीन हो चुका था। लगभग सभी कंपनियों और सरकारों ने भी इसके लिए हिंदी के इस्तेमाल को ही प्रमुखता दी और अभी भी दे रही हैं क्योंकि बहुत बड़ी आबादी वाले हमारे अनेक राज्य हिंदी भाषी हैं ही उसी के साथ अन्य अनेक राज्यों में लोग अंग्रेजी में सहज हो न हो हिंदी में तो हैं। एक सर्वे के मुताबिक भारत की 95 परसेंट से अधिक जनता हिंदी समझती है और अस्सी प्रतिशत से ज्यादा जनता हिंदी बोल भी लेती है, चाहे वो टूटी –फूटी ही क्यों ना हो। इसलिए हिंदी के प्रयोग करने से कम से कम खर्च में अधिक से अधिक लक्ष्य समूह तक अपने उत्पाद या संस्था की बात या विचार लोगों तक पहुंचाये जा सकती हैं।

जैसे हाइब्रिड भोजन में अपना कोई स्वाद नहीं होता वैसे ही आयातित भाषा में कही गयी बात का असर भी दूरगामी नहीं होता। लोग तो मजाक में यहां तक कहते हैं कि पंडित जवाहर लाल नेहरू अगर इस युग में अपना मशहूर भाषण ट्राईस्ट विथ डेस्टिनी देते तो वो नियति से भेंट कहलाया जाता। हिंदी में पहुंचाया गया सन्देश हमारे दिलों को भावनात्मक रूप से अधिक प्रभावित करता है। हम बात को ज्यादा स्पष्टता से समझते हैं और अधिक समय तक याद भी रख पाते हैं जैसे कि दाग अच्छे हैं, इसके झाग ने जादू कर दिया, जिंदगी के साथ भी जिंदगी के बाद भी आदि। जब कोई सन्देश अधिक समय तक याद रहता है तो इससे उसके ब्रांड को न सिर्फ लोकप्रियता मिलती है बल्कि मजबूती भी मिलती है और जुबां पर बरसों तक चढ़े रहते हैं। कौन भूल सकता है सबकी जुबान पर चढ़ा हुआ बुलंद भारत की बुलंद तस्वीर–हमारा बजाज ,हमारा बजाज का स्लोगन।

सम्प्रेषण के लिये के लिए हिंदी के महत्व को हमारे मार्केटिंग विशेषज्ञ,राजनीतिक दल अच्छी तरह से पहचान गए हैं। सिनेमा, कमेंट्री, मार्केटिंग अभियानों में हिंदी का प्रयोग काफी बढ़ रहा है फिर भी यही मन यही कहना चाहता है को ये दिल मांगे मोरकहकर संबोधित करते हैं।

हिंदी अपने आप में इतनी उदार है उसमें सभी भाषाओं के शब्द समाए हुए हैं। हिंदी अनुदार कभी नहीं थी, उसने हर भाषा–बोली को अपने में आत्म सात कर रखा था, वरना अंग्रेजी के अलावा तुर्की,अरबी तक के शब्द हिंदी में भरे ना पड़े होते और अब तो लोग यहां तक मानते हैं कि हिंदी और उर्दू दो भाषाएं नहीं अपितु एक ही भाषा है, बस उनकी लिपि अलग–अलग है।

हिन्दी अब सपेरों और साधुओं की भाषा का ही

प्रतिनिधित्व नहीं बल्कि विश्व के सबसे बड़े बाजार में घुसने और पैठ बनाने की चाबी भी रखती है। दुनिया का हर छठा व्यक्ति भारतीय है और हर भारतीय हिंदी जानता अवश्य है। हिंदी ही वो जुबान है जिसके माध्यम से देश के ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचा जा सकता है।

हिंदी का जो नया स्वरूप इस देश में अब उभर रहा है और जिसके पीछे मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है वह यह है कि हिंदी अब इस देश में परम्परा ही नहीं वरन आधुनिकता का भी प्रतिनिधित्व करने लगी है। पुरानी पीढ़ी के साथ साथ कॉन्वेंट में पढने वाली नयी पीढ़ी अपने को हिंदी में ज्यादा सहज महसूस करती है। रेडियो जॉकी, डिस्को जॉकी और विडियो जॉकी जो पहले अंग्रेजी में कभी कभी हिंदी का छौंक लगाते थे वो भी मात्र हास्य पैदा करने के उद्देश्य से, वे सब अब अपने प्रोग्राम हिंदी में पेश करने लगे हैं, भले ही उनकी हिंदी कॉन्वेंट स्टाइल की होती है, पर होती तो हिंदी ही है। इस माहौल ने उद्योग जगत को हिंदी का अधिक से अधिक इस्तेमाल करने पर विवश कर दिया है क्योंकि ये बात जाहिर हो गयी है कि नयी पीढ़ी भी हिंदी को ही अपना मानती है। अंग्रेजी को वह औपचारिकता की भाषा समझती है.हिंदी टीवी चैनलों की देशव्यापी लोकप्रियता ने मार्केटिंग के लिए एक आसान माध्यम उपलब्ध करवा दिया है। विज्ञापनों के अलावा भी सीरिअल्स के अन्दर किसी ख़ास वस्तु के इस्तेमाल, उसके बारे में बोल कर या उसे किसी सीन में दिखा कर भी उस वस्तु को लोकप्रिय करने कि कोशिश की जाती है। ऐसा ही प्रयोग कई हिंदी फिल्मों में भी किया जाता है। कुछ दिनों पूर्व एक हिंदी सीरियल में हीरो और हीरोइन दोनों एक ख़ास मोबाइल नेटवर्क के बारे में बात करते दिखे.ये उस नेटवर्क का मार्केटिंग प्रयास था।

आर्थिक उदारीकरण के दौर से आर्थिक समृद्धि महानगरों के एकाधिकार से निकल कर छोटे शहरों, कस्बों और गाँव तक पहुंची। लोगों तक पहुंच बनाने के लिये जो साफ्टवेयर बनाये गए, उसमें अनिवार्य रूप से हिंदी शामिल की गई। इसमें एक अनूठी बात ये सामने आयी कि अहिन्दी भाषी लोग अब अपनी बात समझाने के लिये अब सम्पर्क भाषा के तौर पर अंग्रेजी के बजाय हिंदी का प्रयोग करते हैं। उद्योगपतियों को अपने माल सामान की बिक्री के लिए वहां के बाजारों में असीम संभावनाएं नज़र आईं। उस बाज़ार में मार्केटिंग के लिए दो ही रास्ते थे या तो वहां की स्थानीय भाषा का इस्तेमाल करना या फिर हिंदी का।

लगभग सभी कंपनियों और प्रतिष्ठानों ने इसके लिए हिंदी के इस्तेमाल को ही प्रमुखता दी और अभी भी दे रही हैं क्योंकि हमारे अनेक राज्य तो हिंदी भाषी हैं ही उसी के साथ अन्य अनेक राज्यों में लोग अंग्रेजी में सहज हो न हो हिंदी में तो हैं। इसलिए हिंदी का प्रयोग करने लगे।

हिंदी कोई दीवार नहीं खड़ी करती बल्कि भाषायी पुल बनाती है,आइये इसे जन माध्यमों के जरिये जन-जन की भाषा बनाएं।

महादेवी वर्मा

जन्म २६ मार्च १९०७
मृत्यु ११ सितम्बर १९८७

१९३२ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद उनकी प्रसिद्धि का एक नया युग प्रारम्भ हुआ। अपने प्रयत्नों से उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। १९३२ में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार सँभाला। १९३४ में नीरजा तथा १९३६ में 'सांध्यगीत' नामक संग्रह प्रकाशित हुए।

१९५६ में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिए पद्मभूषण की उपाधि और १९६९ में विक्रम विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि से अलंकृत किया। इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिए १९३४ में 'सक्सेरिया पुरस्कार', १९४२ में स्मृति की रेखाओं' के लिए द्विवेदी पदक प्राप्त हुए। १९४३ में उन्हें 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। 'यामा' नामक काव्य संकलन के लिए उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' वर्ष १९८३ में प्राप्त हुआ। इसी वर्ष उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार के 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। १९८८ में उन्हें पद्मविभूषण से भी सम्मानित किया गया।

स्मरण

लोकमाता अहिल्याबाई होळकर

डॉ. संध्या टिकेकर, बीना

क्या किसी शासक का अपनी प्रजा के साथ संवेदनात्मक स्तर पर गहरा जुड़ाव हो सकता है? क्या किसी शासक को राष्ट्रीय अस्मिता और संस्कृति का संरक्षण करते हुए वास्तविक अर्थों में जनकल्याण करना संभव हो सकता है? क्या कोई शासक चुनौतियों के बीच भी अपने पद-दायित्व, कार्यों और कार्य क्षेत्र की मर्यादाओं का सदा ही स्मरण रख सकता है? तो उत्तर 'हाँ ' में मिलता है और इन प्रश्नों की भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में की गई पड़ताल से एक नाम जो बड़ी स्पष्टता से उभर कर आता है ,वह है लोकमाता अहिल्याबाई होळकर का।

इंदौर की देवी अहिल्याबाई होळकर, होळकर राज्य की समर्थ शासक थीं। वे संकल्पवान थीं। चुनौतियों का स्वीकार कर,उन पर विजय पाना जानती थीं। अहिल्याबाई के 11 दिसंबर 1767 से 13 अगस्त 1795 तक के,28 वर्षों के लोक शासक जीवन के कार्यों को यदि कुछ सूत्र वाक्यों में कहा जाए तो स्पष्ट होता है कि -

वे शासक थीं पर सिंहासन पर आसीन नहीं थीं। राज्यकर्ता थीं पर सत्ता की दौड़ में कभी नहीं थीं। वे पेशवाओं के प्रति निष्ठावान थीं किन्तु उनके आगे नतमस्तक नहीं थीं। वे व्रतस्थ थीं किन्तु सन्यासिनी नहीं थीं। जिस काल में लड़ाई,लूट और हुकूमत यही आक्रांताओं का एक मात्र काम था,उसी काल में अहिल्याबाई की कल्याणकारी प्रतिभा की किरणें भरतखण्ड की नदियों के घाटों-घाटों पर प्रकाशित हो रही थीं।

अपने सदाचरण ,संवेदनशीलता और उदार विचारों से जन-मन का आदर पाने वाली अहिल्याबाई क्रांतिकारी विचारों की स्वाभिमानी स्त्री थीं। उन्होंने अपने समय की परम्पराओं की देहरी को लाँघ कर अनेक कार्य किये थे-

पति खंडेराव की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने मालवा प्रदेश के प्रमुख कर्ताधर्ता, अपने श्वसुर मल्हारराव होळकर की बातों का मान रखते हुए ,तत्कालीन रूढ़ि 'सती प्रथा ' को न स्वीकार कर,अपने छोटे बच्चों के पालन पोषण के लिए स्वयं को जीवित रखा।

उन्होंने 'दत्तक विधान' की रूढ़ि को न मानते हुए स्वयं शासन चलाने का निर्णय लिया और माधवराव पेशवे से मालवा क्षेत्र के सत्ता के सूत्र अपने हाथों में लिए।

उन्होंने होळकर-खजाने के धन को युद्धों के लिए न दे कर,उसे जन कल्याण में लगाया।

अपने पुत्र-पौत्रों को सत्ता देने-दिलवाने का खेल उन्होंने कभी नहीं खेला। अपने पुत्र का अपराध सिद्ध हो जाने पर उन्होंने उसे भी दण्डित किया।

वे धन का सम्मान करना जानती थीं। उन्होंने राजकोषीय धन का अपने वैयक्तिक अथवा पारिवारिक खर्च के लिए कभी भी उपयोग नहीं किया था। वे स्वयं अपने प्रत्येक खर्च का हिसाब रखती थीं तथा राज कार्य से जुड़े औरों से भी खर्चों का ब्यौरेवार हिसाब लेती थीं।

उत्तर और दक्षिण की ओर से महेश्वर आने जाने वाले सम्मानित मराठा-सरदारों, भिक्षुकों, शास्त्रीपण्डितों, सेवादार आदि सभी के ठहरने-खाने की व्यवस्था, आवश्यक होने पर उपचार की व्यवस्था, यात्रियों के लिए मार्ग-व्यय आदि का वे विशेष ध्यान रखती थीं।

अठारहवीं शताब्दी के मराठों के इतिहास के आकाश में 'शुक्र तारा' की भाँति चमकने वाली अहिल्याबाई श्रेष्ठ राज्यकर्ता थीं। उन्होंने भरतखण्ड के भू भाग पर जगह - जगह तालाब, मंदिर, धर्मशालाएँ बनवाईं। अन्नछत्र चलवाये। मंदिरों का जीर्णोद्धार और नदी घाटों पर सुधार कार्य करवाया। इन सब कार्यों के पीछे उनकी दूरदृष्टि काम कर रही थी।

उस समय तक ब्रिटिश, देश के चारों ओर फैलने लगे थे। दिल्ली की बादशाहत सुस्त पड़ चुकी थी। मराठों की राजधानी 'सातारा' कमजोर हो चुकी थी। पेशवाओं का प्रभाव धूमिल हो चुका था। मराठों के आपसी विवाद बढ़ते जा रहे थे,जिससे मराठेशाही का जहाज हिचकोले खाने लगा था और वह आज नहीं तो कल, डूब कर ही रहेगा या बात तीक्ष्ण बुद्धि की अहिल्याबाई ने भाँप ली थी।

ऐसे में राष्ट्र - समाज का अस्तित्व बचाने के लिए उन्होंने कुछ ठोस निर्णय लिए।

इंदौर,उज्जैन और महेश्वर के क्षेत्र में अहिल्याबाई का आना-जाना प्रायः बना रहता था। किन्तु उनका कार्यक्षेत्र हिमालय के केदारनाथ से दक्षिण के रामेश्वर तक और पूर्व में जगन्नाथपुरी से पश्चिम की द्वारका तक फैला हुआ था। उन्होंने बड़ी संख्या में लोगों को जोड़ा और उन्हीं के लिए लोकोपयोगी कार्य किये।

अहिल्याबाई में लोगों के गुणों की परख करने की अद्भुत क्षमता थी। साथ ही वे श्रम का सम्मान करना जानती थीं। सभी कारीगरों को समय पर योग्य वेतन दे कर, उन्होंने कुशल शिल्पकार, कुशल मूर्तिकारों से मंदिरों-मूर्तियों का निर्माण करवाया। कुशल बुनकर खोज कर उनसे वस्त्र - उद्योग खड़ा किया।

उन्होंने मंदिरों का जीर्णोद्धार कर, धर्मशालाओं निर्माण कर और अन्नदान संस्थाओं को आर्थिक मदद कर, स्थान-स्थान पर संस्कृति केंद्र स्थापित कर, कथा-कीर्तनों के द्वारा लोगों को अपनी परम्पराओं के बारे में बताकर, जनजागरण का कार्य किया। ऐसा करके वे जन सामान्य के मन में भरत खंड की संस्कृति और अस्मिता को जागृत करना चाहती थीं। अहिल्याबाई ने एक ही समय में राजकाज और धर्म कार्य के मध्य अद्भुत संतुलन साधते हुए अनेक लोककल्याणकारी कार्य निष्पादित किये।

अहिल्याबाई द्वारा बनवाये गए नदी -घाटों पर आज भी आम जन स्नान-ध्यान करते हुए दिख जाते हैं। उनके द्वारा हिमालय की शीतल छाँव में खुदवाये गए गरम जल के कुंडों का लाभ आज भी यात्रीगण उठाते दीखते हैं।

अहिल्याबाई ने अपने 28 वर्षों के शासन काल में निर्भीकता से, स्वविवेक से निर्णय ले कर शासन करते हुए जनता के हितों को सर्वोपरि रखा। भरतखण्ड की अस्मिता को सदा केंद्र में रख कर, उसे बचाये रखने का साहस दिखाया। एक बार सवाई माधव पेशवा का साथ देते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि - ''बादशाही फ़ौज और खजाना दोनों दृष्टियों से मजबूत होते हुए भी ;बादशाह कौन बनेगा, यह पेशवाओं ने ही तय किया था इसलिए पेशवाओं को बादशाही की चाकरी करने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

लोगों को सन्मार्ग दिखने वाली,जनसामान्य के सुखों का ध्यान रखने वाली,तेजस्वी वृत्ति की शांत स्वभाव वाली भरतखण्ड की इस उदात्त, पुण्यश्लोक देवी अहिल्याबाई का नाम भारतीय इतिहास और लोगों के मानों में सदैव आदर पता रहेगा।

सन्दर्भ - ज्ञात -अज्ञात अहिल्याबाई होळकर ,लेखिका विनया खडपेकर राजहंस प्रकाशन, पुणे, संस्करण तीसरा, अक्टूबर 2008

===

(पृष्ठ क्र. 21 से आगे....)

स्व. पं. ग. र. वैशंपायन

भारतीय स्वातंत्र्य समर का हिंदी में अनुवाद किया। वैशंपायन जी एक लेखक, वक्ता, कोषकार, हिंदी प्रचारक, अनुवादक, क्रांतिकारी, राष्ट्रसेवक और भाषा पंडित थे।

जय भारती अंक दिसंबर 1947 में श्री. म. स. बर्वें ने पं. ग. र. वैशंपायन जी के बारे में लिखा था कि पं. ग. र. वैशंपायन जी स्वातंत्र्यवीर सावरकर विरचित क्रांतिगीता 1857 का स्वातंत्र्य संग्रामके संरक्षक और प्रचारक ही नहीं, उसको व्यवहृत करने में जो इने गिने लोग हो गए हैं उनमें से एक हैं। भूतपूर्व ब्रिटिश सरकार की नौकरी में रहकर जो निरे नौकर नहीं रहे उनसे भी श्री वैशंपायनजी सर्वथा भिन्न थे। सरकारी नौकरी के कारण वे जहाँ कहीं भी रहे,लोकसंग्रह का काम उन्होंने किया, चाहे वह व्यायामशाला स्थापना का हो, चाहे गीता वर्ग चलाने का हो, चाहे हिंदी प्रचार का हो। गुजरात के काठियावाड में कुछ व्यायामशालाएं वैशंपायन जीने स्थापित कीं। सर्वांगीण राष्ट्रीय उन्नति में जहाँ जिस बात की कमी दिखाई दी वहाँ उसीका वे प्रचार करते रहे। यह मानी हुई बात है कि सामुदायिक उत्थान में समुदाय की भाषा ही उसकी जड है। शरीर में जो स्थान रक्त का होता है वही राष्ट्र में राष्ट्रभाषा का होता है। इसलिए उन्होंने महाराष्ट्र में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न की। हिंदी प्रचार संघ के माध्यम से और हिंदी का प्रचार भी उसी के माध्यम से किया।

ऐसे सांस्कृतिक दृष्टिकोण और देशभक्ति के साथ हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित करने वाले इस सच्चे सेवक का 9 अक्टूबर 1953 को नासूर नामक बीमारी के कारण निधन हो गया। लेकिन उनकी विरासत हमेशा जीवित रहेगी। उनको शत् शत् प्रणाम।

स्वतंत्रता की प्रणेता

महारानी अवन्ती बाई लोधी

जयंती सिंह लोधी, सागर

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) में अनेक वीरों और वीरांगनाओं ने अपने अदम्य साहस और देशभक्ति का परिचय दिया। इनमें महारानी अवन्तीबाई लोधी का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। वे ऐसी वीरांगना थीं जिन्होंने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँककर मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनका जीवन साहस, त्याग, स्वाभिमान और राष्ट्रप्रेम की अद्वितीय गाथा है।

महारानी अवन्तीबाई का जन्म 16 अगस्त 1831 को वर्तमान सिवनी जिले के मनकेहनी ग्राम में एक प्रतिष्ठित लोधी राजपूत परिवार में हुआ था। उनके पिता राव जुझार सिंह एक साहसी एवं प्रभावशाली जागीरदार थे। बचपन से ही अवन्तीबाई ने घुड़सवारी, तलवारबाजी और युद्धकला में विशेष दक्षता प्राप्त की। उनके व्यक्तित्व में वीरता और नेतृत्व क्षमता का अद्भुत संगम था।

उनका विवाह रामगढ़ रियासत के राजा विक्रमादित्य सिंह से हुआ। राजा के अस्वस्थ हो जाने के बाद राज्य की बागडोर महारानी अवन्तीबाई ने संभाली। अंग्रेजों ने उनकी शक्ति और लोकप्रियता को देखकर रामगढ़ रियासत को अपने नियंत्रण में लेने का प्रयास किया। उन्होंने कोर्ट ऑफ वार्ड्स लागू कर राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। यह महारानी को स्वीकार नहीं था।

सन् 1857 में जब स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला पूरे देश में फैल रही थी, तब महारानी अवन्तीबाई ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का संकल्प लिया। उन्होंने आसपास के राजाओं, जमींदारों और जनता को एकजुट कर अंग्रेजी शासन के खिलाफ विद्रोह का आह्वान किया। उनके ओजस्वी नेतृत्व ने हजारों लोगों में स्वतंत्रता की भावना जागृत कर दी।

महारानी ने रामगढ़ और मंडला क्षेत्र में अंग्रेजी सेनाओं को कड़ी चुनौती दी। उन्होंने अपने सैनिकों के साथ कई युद्धों में असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया। अंग्रेजों की विशाल सेना के सामने भी उन्होंने कभी आत्मसमर्पण नहीं किया। युद्धभूमि में वे स्वयं सैनिकों का नेतृत्व करती थीं और उनके साहस से शत्रु भी भयभीत हो उठते थे।

मार्च 1858 में अंग्रेजी सेना ने रामगढ़ पर आक्रमण किया। अंतिम युद्ध में जब उन्हें लगा कि शत्रु के हाथों बंदी बनना पड़ सकता है, तब उन्होंने अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए वीरगति का वरण किया।

20 मार्च 1858 को मातृभूमि के लिए अपना बलिदान देकर वे अमर हो गईं। महारानी अवन्तीबाई लोधी का बलिदान भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता, स्वाभिमान और नारी शक्ति का अनुपम उदाहरण है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि देश की रक्षा और स्वतंत्रता के लिए महिलाएँ भी किसी से कम नहीं हैं। उनका जीवन आज भी हमें अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने, साहसपूर्वक चुनौतियों का सामना करने तथा राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखने की प्रेरणा देता है। महारानी अवन्तीबाई लोधी केवल एक वीर रानी ही नहीं, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की अग्रदूत और नारी शक्ति की प्रतीक थीं। उनका शौर्य, पराक्रम और बलिदान सदैव देशवासियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा। भारत माता की इस वीर पुत्री को शत-शत नमन।

नारी शक्ति की गौरव गाथा रानी अवंती बाई है ।
लोधी वंश की शौर्य पताका रानी अवंति बाई है ।।
जन्म जयंती आज मनाएँ द्वार द्वार पर दीप जलाएँ ।
वीरों वाला केसरिया रंग आओ माथे तिलक लगाएँ ।।
पुरुषार्थ हमारा आभूषण है इसको भूल नहीं जाना ।
आने वाली पीढ़ियों को साहस, संबल सिखलाना ।।
प्रखर पराक्रम पुंज प्रदाता रानी अवंती बाई है ।
नारी शक्ति की गौरव गाथा रानी अवंती बाई है ।।
मातृभूमि की ओर जब किसी दुश्मन ने देखा था
रणचंडी का वेश धरकर सीने में भाला घोंपा था ।।
रानी अवंती बाई को रामगढ़ जान से प्यारा था।
राज्य नहीं दूँगी अपना अंग्रेजों को ललकारा था ।।
रामगढ़ की महारानी की वीरों ने महिमा गाई है ।
नारी शक्ति की गौरव गाथा रानी अवंती बाई है ।।
देश के किसानों में रानी ने स्वाभिमान जगाया था ।
दाँव पर आन थी तो गर्म लहू में उफान आया था ।।
सर पर कफ़न को बाँध कर निकल पड़ी मैदान में ।
कुछ करो या मरो का संदेश घर घर में पहुँचाया था ।।
लोधेश्वर प्रभु से करूँ प्रार्थना अमर रहे ये बलिदानी ।
देश भक्ति की परम प्रेरणा महारानी अवंती बाई हैं ।।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता और आकाशवाणी @ 90

अरुण कुमार पासवान, दिल्ली

15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हो गया।हालांकि 1937 में प्रांतीय सरकारों के गठन के बाद आज़ादी का आंदोलन निकट भविष्य में अपनी पूर्ण सफलता के लिए आश्वस्त हो चुका था, पर इसके बाद भी आवश्यकता थी आंदोलन के उग्र रूप धारण करने की, जिसकी परिणति सामने आई 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के बाद में,जो एक ऐसा सैलाब था जिसमें अंग्रेज़ी सरकार का तख़्त ध्वस्त होना ही था।

यह समय वह था,जब भारत सहित विश्व के अनेक देशों में संगठित रूप से रेडियो प्रसारण आरंभ हो चुका था।भारत में 08 जून,2026 को यह ऑल इंडिया रेडियो के नाम से स्थापित हो गया था। यह माध्यम लोगों के लिए न सिर्फ़ सूचना का माध्यम था, बल्कि लोग अभिव्यक्ति का महत्व समझने लगे थे, और रेडियो पर आने वाले विचार लोगों को बहुत कुछ बताने लगे थे। जहाँ अंग्रेज़ी सरकार के हाथों में इसकी कमान थे, वहाँ से सरकारी आदेश ही नहीं निकलते थे, बल्कि सरकार द्वारा समय-समय पर पारित अधिनियम या अन्य घोषणाएँ सरकार की सोच में लचीलापन भी भाषित कर रहे थे;वहीं कई देशों में अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध उठने वाली आवाज़ें भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को साहस और सकारात्मक संभावनाएं भी बता रही थी।नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भी जर्मनी, सिंगापुर और रंगून से रेडियो प्रसारण द्वारा भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों में अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध जोश फूँका था।

03 जून 1947 को भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन की भारत के विभाजन की घोषणा लोगों ने आकाशवाणी दिल्ली से ही सुनी थी; इसमें निहित आज़ादी की घोषणा, भारतीय जनता के लिए उसके हित की पहली बड़ी ख़बर थी। और फिर 15 अगस्त,1947 को पंडित जवाहर लाल नेहरू जी की भारत की आज़ादी की घोषणा तो भारतीय प्रजातंत्र की अपनी घोषणा थी, जिसने एक युग का अंत किया और एक नए युग की शुरुआत की।

भारत आज़ाद हो गया था, पर अब उसे अपनी जनता के लिए स्वयं निर्णय लेना था। देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, विभाजन ने देश की स्थिति अराजक और सोचनीय बना दी थी। एक नए राष्ट्र के लिए, अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने, सांप्रदायिक सद्भाव बनाने, कृषि, उद्योग, शिक्षा सब को उन्नत करने की बड़ी चुनौती थी। तो एक बड़ा समाधान था रेडियो जिसके सहारे जनता की आवाज़ सुनी जाय और जनता को आश्वस्त किया जाय, योजनाओं की घोषणा और उनके त्वरित कार्यान्वयन द्वारा उसे विश्वास दिलाया जाय, कि अब सरकार उसकी अपनी है, हर निर्णय उसके हित में होगा और निर्णय में उसकी भागीदारी होगी।

देश विभाजन की घोषणा और एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े में जाने के क्रम में संघर्ष, हिंसा और दिशाहीनता की स्थिति पैदा हो गई थी। शरणार्थियों की समस्या अति गंभीर थी।कुरुक्षेत्र के शिविर में ढाई लाख से अधिक शरणार्थी अस्त-व्यस्त थे। ऐसी स्थिति में कुरुक्षेत्र में शिविर के शरणार्थियों से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का मिलना तो संभव नहीं था।फिर रेडियो से संबोधन का रास्ता निकाला गया और 12 नवंबर 1947 को पहली और आखिरी बात दिल्ली के प्रसारण भवन से उन शरणार्थियों को बापू ने संबोधित किया और धैर्य रखने की अपील की।

जनता और सरकार के बीच वैचारिक आदान-प्रदान का एकमात्र, त्वरित और कारगर माध्यम रेडियो ही था। कृषि, उद्योग, सिंचाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, जन कल्याण, समाज हित,कुप्रथाओं और रूढ़ियों का उन्मूलन साथ ही वैज्ञानिक उपलब्धियों से रक्षा, उद्योग, कृषि और शिक्षा आदि को जोड़ने में पहले अकेले रेडियो ने अपनी भूमिका निभाई और टेलीविजन के आने के बाद भी वह सशक्त माध्यम बनकर डटा रहा।

1936 का ऑल इंडिया रेडियो 1956 में आकाशवाणी बन गया।यह नाम भारतीयों के लिए पूर्व से ही लोकप्रिय और देववाणी की तरह था।लोगों ने आकाशवाणी से मिलने वाली शिक्षा और सूचना को देववाणी की तरह ही महत्वपूर्ण और लोक कल्याणकारी पाया। संस्कृति, लोकगीत और लोकगाथाओं, संगीत, खेल, सब को संरक्षण और विकास मिला आकाशवाणी से और साहित्यकार, कलाकार, विचारक आदि को भी इसने समुचित पहचान दिलाई। नेशनल चैनल

के आ जाने पर देश के कोने कोने तक पहुँच गई आकाशवाणी। मनपसंद, हितैषी कार्यक्रम और अनिवार्य समाचार, देश दुनिया के,लोग घर बैठे सुनने लगे।विदेश प्रसारण तो पहले से कई देशों में पहुंच ही रहा था, कई भाषाओं में।

लोगों को स्वतंत्रता का महत्व समझाया और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अधिकार के साथ कर्त्तव्य पालन का मंत्र दिया। बच्चों, किशोरों,तरूणों,युवाओं,महिलाओं को आवाज़ दी।समय की गति के साथ एफ एम ट्रांसमीटर आये, पहले की अपेक्षा अधिक कर्णप्रिय प्रसारण लोगों को मिलने लगा। आकाशवाणी ने भी एफ एम गोल्ड और एफ एम रेनबो को मुख्यतः संगीत और समाचार से सजाया। और अब तो एक छोटे से मोबाइल में बस गया है रेडियो। आकाशवाणी पर प्रधानमंत्री के मन की बात होती है और आकाशवाणी श्रोताओं की जेब की बात होती है।

आज़ादी पूर्व से आज तक साथ-साथ चलते हुए ऑल इंडिया रेडियो/आकाशवाणी और स्वतंत्रता, स्वतंत्र भारत और भारतीयों के विकास के सबसे दो श्रेष्ठ साधन हैं। युद्ध में, शांति में, प्रगति में रेडियो से जुड़े, डेढ़ सौ करोड़ से अधिक भारत के स्वतंत्र नागरिकों को इस सहयात्रा के 90 वर्ष पूरे होने की बधाई और शुभकामनाएं!

(पृष्ठ क्र. 13 से आगे....)

गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान संदर्भ

था कि हमारी भाषा में वह 'तेज' नहीं है। आशय यह था कि विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन आदि के लिए हिन्दी (खास तौर से उस समय) समृद्ध नहीं है। जब हमारी भाषा में उस तरह का तेज (समृद्धि) आएगा तभी देश उन्नति कर सकेगा। गांधी जी की सीख के अनुसार ही अब विज्ञान, प्रौद्योगिकी, व्यापार-व्यवसाय और संचार माध्यमों में जरूरतों के मुताबिक हिन्दी को ढाला गया है। अब इंटरनेट, वेबसाइट, पोर्टल, ई-मेल, बहुभाषिक कम्प्युटर उपलब्ध हैं । हिंदी में कार्य करने के लिए ऐसे सॉफ्टवेअर उपलब्ध हैं, जिनमें पत्र-व्यवहार, अकाउंटिंग, डिजाइनिंग, यूनिस, जिस्ट कार्ड आदि की सुविधाएँ हैं । वैश्विक दौड़ में अपने को बनाए रखने के लिए हमें वांछित परिवर्तन करना होंगे । यदि सजग रहे तो बाजार की कोई शक्ति हमें पराजित नहीं कर सकती । गांधीवादी अर्थशास्त्र में ग्राम स्वराज, कुटीर उद्योग, स्वदेशी आंदोलन तथा स्थानीय संसाधनों के अधिकाधिक उपयोग की अवधारणा थी। गांधी जी की अर्थनीति से बढ़ते उपभोक्तावाद और मशीनीकरण पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

गांधी से प्रभावित प्रेमचंद के लेखन में गांधी जी के मूल-मंत्र बिखरे हुए हैं। हिंदी साहित्य (जिसका भाषा से गहरा सम्बन्ध है) के अनेक मनीषियों के सृजन में गांधी-दृष्टि के स्पष्ट संकेत हैं। प्रेमचंद की नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि गांधी जी से प्रभावित रही। वे भी सांप्रदायिक एकता के समर्थक थे। इस संदर्भ में 'सांप्रदायिकता और संस्कृति' उनका अत्यंत महत्वपूर्ण आलेख है। 8 फरवरी, 1921 को गोरखपुर में गांधी जी के भाषण को सुनकर एक सप्ताह बाद ही प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। प्रेमाश्रय, सोजेवतन, गबन, मंदिर-मस्जिद आदि कई रचनाओं में गांधी के आदर्शों को उकेरकर जनता को राष्ट्रीय धारा से जोड़ने का प्रयास प्रेमचंद ने किया । महादेवी ने एक जगह लिखा था- 'प्रेमचंद की रचनाओं में गांधी और मार्क्स ऐसे मिलते हैं जैसे संगम में गंगा-जमुना ।' जैनेन्द्र कुमार ने 'अकाल पुरूष गांधी' और 'गांधी और जनतंत्र' में गांधी दर्शन की व्याख्या की है। लिखा कि 'गांधी ने हमारी आंखें खोली हैं। स्थिति यह है कि सच्चा, ईमानदार और निष्ठावान व्यक्ति अप्रासंगिक होता जा रहा है तथा तिकड़मी की तूती बोल रही है।' मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने भी गांधी से प्रभावित हो लोगों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत की थी ।

खेद का विषय है कि उदारीकरण के तहत बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन के कारण कारण अंग्रेजी का प्रभुत्व बढ़ा है। युवा पीढ़ी को अपने कॅरियर की चिंता है। उसे हिंदी के लिए किए गए संघर्ष से कुछ लेना-देना नहीं है। वैसे देखा जाए तो अंग्रेजी हमारे समाज को दो फाड़ो में विभाजित करती लगती है। अंग्रेजी में की गई बहस और दिये गये न्यायालयीन फैसले आम आदमी की समझ के बाहर हैं। गांधी जी ने इस खतरे को बहुत पहले पहचान लिया था, कहा था कि 'शिक्षित वर्ग अंग्रेजी के मोह में फँस गया है। यह वर्ग घर के अंदर और बाहर अंग्रेजी में बातचीत करता है। पत्र-व्यवहार भी। कोई भी देश नकलचियों की जाति पैदा करके राष्ट्र नहीं बन सकता । उन्होंने यह भी कहा कि पहली माता (अंग्रेजी) से जो दूध मिल रहा है वह जहरीला है, लेकिन दूसरी माता (हिंदी) से हमें शुद्ध दूध मिलता है। बिना शुद्ध दूध के हम कैसे स्वस्थ रहेंगे ! हमें अपनी भाषा की उपेक्षा कर उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए ।'

शिक्षक दिवस – 5 सितम्बर

गुरु शिष्य विशिष्ट संबन्ध

रंजना दीक्षित, दिल्ली

हमारी संस्कृति में गुरु को एक विशिष्ट स्थान दिया गया है; एक संस्था तथा प्राचीन परम्परा के रूप में देखा गया है।

ऐसा विश्वास है कि गुरु की अनुकंपा से ही सहज समाधि की अवस्था तक पहुँचने में सक्षम हो सकते हैं । यहाँ पर मैं एक चिर स्मरणीय गुरु–शिष्य संबंध का उल्लेख करना चाहूँगी जिन्होंने साहित्यिक जगत में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

गुरुकुल परंपरा में शिष्य अपने गुरु का अंतेवासी होता था, गुरु के व्यक्तित्व और आचरण से सीखता था। लम्बे समय तक साथ रहने के कारण प्रायः संबंध बहुत आत्मीय हो जाते थे। अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त भी शिष्य निरंतर अपने गुरु से सम्पर्क बनाये रख गर्व का अनुभव करते थे। कुछ ऐसा सा ही सम्बन्ध आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम' जी (पंडित जी) और डॉ प्रेम नारायण शुक्ल जी (चाचा जी) के मध्य था। यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहती हूँ कि मैं अपने पिताजी को चाचाजी कहती थी।

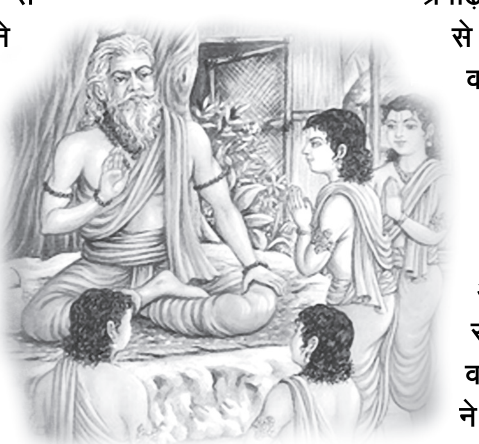

चाचा जी ने बी.ए., डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर से किया, मेधावी छात्र होने के कारण उन्हें पंडित जी का विशेष स्नेह मिला। एम.ए. (हिंदी) करने के उपरांत, पंडित जी के निर्देशन में ही पी. एच. डी. की । गुरुकुल परम्परा की भाँति, शोध प्रबन्ध सम्पूर्ण होने के बाद भी वे चुम्बकीय आकर्षण की तरह उनसे निरन्तर जुड़े ही रहे। पंडित जी डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर में हिंदी विभाग में विभागाध्यक्ष थे। 1942 में एम. ए. हिन्दी की कक्षाएं प्रारंभ होने पर चाचा जी की नियुक्ति प्रवक्ता के रूप में उसी कॉलेज में हुई। 1962 तक पंडित जी विभागाध्यक्ष रहे, तदुपरांत 1977 तक चाचा जी विभागाध्यक्ष के पद पर रहे।

संबंधों की घनिष्ठता निरंतर बढ़ती गयी। एक बार चाचा जी के पिता जी (मेरे बाबा जी) काफ़ी अस्वस्थ हुए; पंडित जी सम्पूर्ण रात्रि चबूतरे के बाहर बैठ मंत्रों का जाप करते रहे। परिणामस्वरूप बाबा जी पूर्ण स्वस्थ हो गये। पंडित जी के इस परदुःखकातरता का पुनीत स्वरूप देख चाचा जी भाव विभोर हो गए; उनके जीवन का दुलार एक बार पुनः जीवंत हो उठा।

गुरु–शिष्य सम्बन्धों ने पारिवारिक रूप ले लिया था। कालांतर में संयोग से दोनों के आवास भी बहुत ही निकट हो गए: 9/68 आर्यनगर, कानपुर चाचा जी का घर था और 9/70 पंडित जी का। घर समीप होने के कारण संबंधों की प्रगाढ़ता और बढ़ गई। किसी विशिष्ट कार्य से बाहर जाने से पूर्व चाचा जी अपने गुरु का आशीर्वाद लेकर ही जाते थे, जीवन पर्यन्त उन्होंने अपने गुरु की पुत्रवत् सेवा की। दिन में कितने ही चक्कर उनके घर के लगाते थे। कानपुर आने वाले मूर्धन्य हिंदी साहित्यकारों का आना जाना प्रायः दोनों घरों में लगा ही रहता था। ''हिंदी साहित्य में विविध वाद'' पुस्तक के प्राक्कथन में चाचा जी ने अपने गुरु के विषय में लिखा, ''उनके सहज, उदार एवं निष्कपट हृदय का ममत्व तथा उनके गंभीर ज्ञान का लाभ मुझे जो प्राप्त हुआ, वह अपनी गुरुता के कारण मेरी वाणी का विषय नहीं बन सकता है ।'' (हिंदी साहित्य में विविध वाद, डॉ प्रेम नारायण शुक्ल, प्राक्कथन, पृष्ठ, ऊ)

3 दिसंबर 1977 को कानपुर में पंडित जी का उनके 75 वर्ष पूर्ण होने पर दो–दिवसीय भव्य अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया था जिसमें दिग्गज साहित्यकारों : श्रीमती महादेवी वर्मा, डॉ रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य किशोरी प्रसाद बाजपेई, डॉ भगीरथ मिश्रा, डॉ विजेंद्र स्नातक, पंडित लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक', आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, आचार्य श्री नारायण चतुर्वेदी, डॉ वागीश दत्त पांडेय आदि ने भाग लिया था।

उसके बाद कानपुर को ऐसे साहित्यिक विद्वतजनों का समागम वर्षों तक देखने को नहीं मिला। कतिपय पत्रकारों ने इसे 'सोम साहित्यकार मेला' के नाम से अभिहित किया।

इस अवसर पर आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम : साहित्य और सर्जना' अभिनन्दन ग्रन्थ का विमोचन हुआ, जिसका संपादन चाचा जी तथा डॉ वाल्मीकि त्रिपाठी जी ने किया था।

गुरु के प्रति असीम श्रद्धा भाव रखने वाले चाचा जी ने अभिनन्दन – ग्रन्थ के सम्पादकीय में लिखा है 'श्रद्धा की पुण्यभूमि में अर्चना का अँकुर उगता है। ... गुरु के प्रति अर्चना की इस पुण्य बेला में मैं याचना करता हूँ–

श्रद्धे! श्रद्धापयेह न: (हे श्रद्धे! हमें श्रद्धा से युक्त कर दो।)' ('आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम': साहित्य और सर्जना', सम्पादकीय: भावयज्ञ, पृष्ठ क)

जब मैं अभिनन्दन ग्रंथ में उनका सम्पादकीय पढ़ रही थी; उसमें एक स्थान पर उन्होंने पंडित जी के व्यक्तित्व के

विषय में लिखा :

'एक ओर काग़ज़ के छोटे छोटे टुकड़ों, लिफ़ाफ़ों के भीतरी भाग के कोरे स्थलों, बची हुई अंकतालिकाओं के पृष्ठों पर लिखना और बण्डलों तथा पैकेटों पर लगी हुई लाख को उचार उचार कर उसको मोहर लगाने में पुन: प्रयोग करना, जिसे लोग कभी–कभी उनकी कृपणवृत्ति समझकर आश्चर्य करते थे और दूसरी ओर अपनी आय के साधनों का ध्यान रखे बिना ही उन्मुक्त दान करना, एक ऐसी वृत्ति है जो उनके व्यक्तित्व को बहुत ऊँचा उठा देती थी।' ('आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम' : साहित्य और सर्जना', सम्पादकीय: भावयज्ञ, पृष्ठ, ग)

इसको पढ़ा, तो लगा कि गुरु और शिष्य की कार्यप्रणाली में कितनी साम्यता थी, लगभग यही स्थिति मेरे घर में भी थी। बची हुई अंकतालिकाओं का उपयोग मैंने भी नोट्स बनाने में किया। बण्डलों तथा पैकेटों पर लगी हुई लाख को उचारने का काम हम लोग बहुत किया करते थे। वस्तुओं का सदुपयोग करना एक परंपरा सी बन गयी थी। दोनों के व्यक्तित्व में भी समानता थी – स्वभावतः सरल और भावुक, सहृदयी, स्वाध्यायी, भाव विव्हल हो अश्रुधारा का निकलना, आर्थिक रूप से लोगों की सहायता करना आदि। यही नहीं, दोनों ही एनन्जाइना से कष्टित थे।

गुरु के प्रति सतत समर्पण भाव ने ही अभिनन्दन ग्रन्थ का रूप लिया। इस भाव–यज्ञ में सम्पादकीय के माध्यम से गुरु के प्रति चाचा जी ने श्रद्धा सुमन कुछ इस तरह अर्पित किये :

उनके संबंध में हम अपनी अकिंचनता में सतत यही अनुभव करते रहते

'क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माहिं।'

('आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम': साहित्य और सर्जना' अभिनन्द ग्रन्थ, सम्पादकीय: भावयज्ञ , पृष्ठ, ज)

चाचा जी का ऐसा मानना था कि श्रद्धा की पुण्यभूमि में अर्चना का अंकुर उगता है। उनका यही भाव गुरुपूर्णिमा के दिन परिलक्षित होता था। गुरु पूर्णिमा का दिन चाचा जी के जीवन में किसी पर्व से कम नहीं होता। कई दिन पहले से तैयारियां शुरु हो जाती थीं परिवार के बच्चे भी इस दिन की प्रतीक्षा करते थे । उस दिन सुबह सब शीघ्र स्नान कर तैयार रहते थे क्यूंकि उस दिन पंडित जी के यहाँ जाना होता था । जो भी उनको पसंद था चाचा जी सब घर में बनवाते थे तथा बाज़ार से (आम का समय होने के कारण) उनकी पसंद के आम लाते थे। मेरी माँ विशेष खीर बनाती थी, उस दिन की बनी खीर का स्वाद ही कुछ अलग होता था। वे उस दिन स्वयं चंदन घिस कर कटोरी में रखते थे, अक्षत, मालादि रख कर अर्चना की थाली तैयार करते थे। सब सामान सहित उनके घर जाते, हम लोगों के पहुंचते ही पंडित जी बहुत ही प्रसन्न हो जाते। जिसप्रकार भगवान की पूजा की जाती है उसी श्रद्धाभाव से चाचा जी अपने गुरु की पूजार्चना करते थे। वह दिन सभी के लिये किसी पर्व से कम नहीं होता। पंडित जी के आशीर्वचनों से सिंचित हो सभी वापस घर लौटते थे। गुरु पूर्णिमा पर पंडित जी की अर्चना का यह क्रम 50 वर्षों से भी अधिक निरंतर चला।

''सोम जी ने जीवन के अंतिम समय (10 जनवरी, 1990) में एक श्लोक डायरी में लिखा और जब चाचा जी उनके पास गए तो वे बोले 'डायरी में मैंने एक श्लोक लिख दिया है, उसे देख लेना' संभवतः उनकी पूर्ण चेतनावस्था का यही एक वाक्य था।'' (आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम' का साहित्य: संवेदना और शिल्प/रानी अग्रवाल; पृष्ठ 8) उसी दिन उनको अस्पताल में भर्ती किया गया और 12 जनवरी, 1990 को महान वेद मनीषी पंचतत्व में विलीन हुए।

चाचा जी, पंडित जी की प्रथम पुण्य तिथि को 'स्मरण पर्व' के रूप में मनाना चाहते थे और उसके लिए सतत प्रयत्नशील भी थे, पर यह मात्र संयोग ही था कि एक वर्ष बाद 10 जनवरी 1991 को ही वे भी अस्वस्थ हुए, और उनको भी उसी दिन अस्पताल ले जाया गया। उस समय भी उनका पूरा ध्यान पर्व को भव्य तथा यादगार बनाने की ओर ही था। उन्होंने आर्यनगर इण्टर कॉलेज, कानपुर में श्रद्धांजलि समारोह आयोजित करने की लगभग पूरी तैयारी कर ली थी। परन्तु विधाता ने कुछ और ही उनके लिए लिखा था, उनको सदैव के लिए गुरु का सानिध्य प्राप्त करवा दिया। अंतिम श्वास भी ठीक एक वर्ष बाद 12 जनवरी, 1991 को ही ली। किसी ने भी इस की कल्पना नहीं की थी। मेरी

(पृष्ठ क्र. 47 पर...)

कथालोक

सीटी, सिग्नल और नियति

– **गौरव रघुवंशी, गुना**

बहुत देर तक जंक्शन की भीड़ में निरुद्देश्य घूमते रहने के बाद हम प्लेटफ़ॉर्म के उस छोर पर आकर बैठ गए, जहाँ रोशनी कुछ धुँधली थी और पटरियाँ अँधेरे में गुम होती चली जाती थीं।

साँझ धीरे-धीरे उतर रही थी। आकाश पर धुएँ और धुंध की मिली-जुली परत थी, मानो कोयले की राख हवा में घुलकर बादल बन गई हो। इंजन की सीटी कभी फट पड़ती, कभी लंबी कराह की तरह दूर तक फैल जाती। लाल और हरी बत्तियाँ अपने नियत स्थानों पर टँगी थीं-एक झपकती, दूसरी स्थिर; जैसे इस लोहे की सभ्यता की आँखें।

पटरियाँ ठंडी, काली और कठोर-दो समांतर रेखाओं की तरह-क्षितिज तक भागती चली गई थीं। उनमें एक अजीब कठोर निष्ठा थी। वे मुड़ती नहीं थीं, झुकती नहीं थीं; बस चली जाती थीं-सीधी, सीधी, और सीधी।

पीछे मालगोदाम फैला था। बोरे, पेटियाँ, रस्सियों के फंदे, लकड़ी के तख्ते। कुछ कुली अपनी पीठों पर भार लादे झुके हुए थे। उनके पाँवों की चाल में थकान थी, पर ठहराव नहीं। मानो वे रुकना जानते ही न हों।

दाएँ ओर चाय की दुकान थी। उबलती केतली से भाप उठ रही थी। चायवाला गिलासों को खनखनाता हुआ धो रहा था। दो-चार बाबू चाय की चुस्की लेते हुए राजनीति पर चर्चा कर रहे थे-देश कहाँ जा रहा है, किसकी सरकार टिकेगी, कौन-सा नेता ईमानदार है। आदि, आदि।

उधर तीसरे दर्जे के प्रतीक्षालय के सामने ज़मीन पर कुछ परिवार बैठे थे। गठरियाँ, बर्तन, बच्चे-सब एक-दूसरे से सटे हुए। एक बूढ़ी स्त्री बार-बार अपने पल्लू से बच्चे का मुँह पोंछती। एक युवक टिकट की पर्ची को बार-बार निकालकर देखता-जैसे उसमें भविष्य लिखा हो।

प्लेटफ़ॉर्म पर मनुष्यों का प्रवाह था। कोई उतर रहा था, कोई चढ़ रहा था, कोई विदा कर रहा था, तो कोई लौट रहा था। रोना, हँसना, पुकारना, भागना-सब एक साथ। यह रेल की दुनिया थी-चलते पहियों पर टिकी हुई एक चलायमान बस्ती।

भीतर, इंजन के पास, कुछ मज़दूर कोयला झोंक रहे थे। उनके चेहरे कालिख से ढँके थे। पसीना और धुआँ मिलकर उनके बदन पर एक और परत बना देते थे। वे जैसे मनुष्य न होकर, मशीन के विस्तार हों। फावड़े की हर चोट के साथ कोयला भीतर जाता और आग भड़क उठती।

पटरियों के किनारे-किनारे कुछ और आदमी हथौड़े से फिश-प्लेट कस रहे थे। हर चोट पर टनकार उठती-टन्! – और वह ध्वनि पटरियों पर दौड़ती चली जाती। वे धरती को बाँध रहे थे कि कहीं यह लोहे की सभ्यता फिसल न जाए।

हम चुप थे। मित्र भी चुप थे। ठंडी हवा में कोयले की किरकिरी थी।

इतने में एक आदमी हमारी ओर आया। उम्र कोई चालीस की होगी, पर चेहरा पचपन का लगता था। आँखें गहरी और थकी हुई। दाढ़ी में धूल जमी थी। बदन पर फीकी बनियान, नीचे गंदी धोती। कंधे पर औज़ारों की थैली।

वह हमारे सामने आकर ठिठका। शायद हमें देख रहा था, पर जैसे पहचान नहीं पा रहा हो।

मित्र ने पूछा– ''ड्यूटी से लौटे हो?''

वह चौंका– ''हाँ बाबू।''

''क्या काम करते हो?''

''यही पटरी का। जहाँ कील ढीली हो, जहाँ जोड़ खुल जाए-हम कस देते हैं।''

''दिन भर?''

''दिन भर भी... रात को भी। जब खबर आए।''

उसकी आवाज़ में कोई शिकायत नहीं थी। बस एक सपाट स्वीकार था।

इतने में एक मेलगाड़ी प्लेटफ़ॉर्म से गुज़री। खिड़कियों से रोशनी झर रही थी। भीतर लोग बैठे थे-गरम कपड़ों में लिपटे, बातचीत करते हुए। एक बच्चे ने खिड़की से सिर बाहर निकाला और हँसते हुए हाथ हिलाया।

गाड़ी चली गई। उसकी गूंज स्टेशन में गूंजती रही।

हम फिर चुप हो गए।

स्टेशन मास्टर के कमरे में घड़ी टिक टिक कर रही

थी। हर सेकंड मानो किसी अदृश्य जीवन का हिसाब रख रहा था।

प्लेटफ़ॉर्म की भीड़ धीरे-धीरे कम होने लगी। शाम गाढ़ी हुई। लाल बत्तियाँ और चमकी। हवा में ठंड घुल गई।

वह मज़दूर अब भी पास खड़ा था। उसने अपनी थैली नीचे रख दी और हाथों को रगड़ने लगा।

''घर कहाँ है?'' मैंने पूछा।

''यहीं से पंद्रह कोस दूर गाँव में।''

''कौन-कौन है परिवार में?''

''औरत है। दो बच्चे थे... एक है।''

''दूसरा कहा गया?''

''एक दिन सब काम पर आए थे। वह खेलते-खेलते पटरी पर चला गया और मालगाड़ी की चपेट में.....''

वह चुप हो गया।

हमने और कुछ न पूछा।

दूर कहीं फिर हथौड़े की टनकार सुनाई दी।

रेल चलती रही।

पटरियाँ चमकती रहीं।

और हम उस लोहे की दुनिया के बीच बैठे हुए, न जाने किस बात की प्रतीक्षा करते रहे।

रात पूरी तरह उतर आई थी। प्लेटफ़ॉर्म की भीड़ छँट चुकी थी। अब इक्का-दुक्का यात्री बचे थे-कोई बेंच पर ऊँघता हुआ, कोई अपना सामान सिरहाने रखकर चौकन्ना लेटा हुआ। लाल बत्तियाँ स्थिर थीं, जैसे पहरा दे रही हों। हवा में कोयले की गंध और लोहे की ठंडक घुल गई थी।

हम उसी बेंच पर बैठे थे। सामने पटरियाँ अँधेरे में डूबी थीं। कहीं दूर से टन-टन की मद्धिम आवाज़ आ रही थी-मानो कोई अब भी कील कस रहा हो।

वह मज़दूर जो देर से चुप खड़ा था, अब प्लेटफॉर्म के छोर की ओर बढ़ने लगा।

''कहा जा रहे हो?'' मैंने पूछा।

वह धीरे से बोला - ''बाबू, उधर लाइन में दरार की खबर है। अभी जाना है।''

''अभी?'' मित्र ने पूछा।

''हाँ। रात की मालगाड़ी भारी है। अगर जोड़ खुला रहा तो मुसीबत होगी।''

उसने थैली कंधे पर डाली और जाने को हुआ।

दूर से एक गार्ड की सीटी बजी। हवा में धातु की ठंडी लहर दौड़ गई।

''तुम लोग कितने हो इस लाइन पर?'' मित्र ने पूछा।

''चार। दो दिन में बदल जाते हैं। एक बीमार है। एक छुट्टी पर। आज रात मैं अकेला जाऊँगा।''

''अकेले?'' मैंने हैरान होकर पूछा।

''क्या करें? लाइन अकेली नहीं छोड़ सकते।''

वह चला गया।

हम देर तक उसकी जाती हुई पीठ देखते रहे। अँधेरे में उसकी टॉर्च की रोशनी डगमगाती रही-जैसे किसी जिद्दी जुगनू की लौ।

प्लेटफ़ॉर्म अब लगभग सूना था। चायवाला बर्तन समेट रहा था। कुली दीवार से टेक लगाकर बैठे थे। स्टेशन मास्टर का कमरा बंद हो चुका था; भीतर की घड़ी अब भी टिक टिक कर रही थी।

अचानक एक तेज़ हवा चली। सूखी धूल और कोयले की किरकिरी हमारे चेहरों से टकराई।

मित्र ने कहा - ''देखो, यह पूरी व्यवस्था कैसी है। ऊपर डिब्बों में लोग आराम से सोते हैं। नीचे यह आदमी रात में ठंडा लोहा कसता है।''

मैंने कहा- ''व्यवस्था ऐसे ही चलती है। कोई चलता है, कोई चलाता है।''

''और कोई कुचला जाता है।''

हम फिर चुप हो गए।

कुछ देर बाद मालगाड़ी आई। लंबी, भारी, अंतहीन-सी। उसके पहिए पटरियों पर थरथराते हुए गुज़रे। हर डिब्बा जैसे ज़मीन पर अपनी मुहर लगाता हुआ।

गाड़ी निकल गई। सूने स्टेशन में उसकी सीटी की आवाज गूंजती रही।

दूर वही टन-टन की आवाज़ अब सुनाई नहीं दे रही थी।

रात और गाढ़ी हुई।

हम उठे और प्लेटफ़ॉर्म के छोर की ओर टहलने निकल गए। अँधेरे में पटरियों की चमक हल्की-सी दिखाई देती थी। कहीं-कहीं तेल की बूँदें जमी थीं।

एक जगह जाकर हम ठिठके। ज़मीन पर औज़ारों का छोटा-सा निशान था-जैसे किसी ने थैली रखी हो।

मित्र ने धीरे से कहा- ''यहीं कहीं होगा।''

उसी क्षण दूर से एक चीख-सी सुनाई दी-बहुत हल्की, बहुत क्षीण।

हम दोनों ठिठक गए।

फिर सन्नाटा।

कुछ पल बाद इंजन की सीटी फटी-तीखी, चीरती हुई।

हम दौड़े। पर अँधेरा घना था। केवल लाल बत्ती स्थिर थी-निर्मम, निर्विकार।

हम जिस दिशा में दौड़े थे, वहाँ अँधेरा और भी घना था। स्टेशन की रोशनी पीछे छूट गई थी। पटरियाँ अब काली रेखाओं की तरह ज़मीन पर फैली थीं। दूर कहीं टॉर्च की हल्की-सी काँपती रोशनी दिखाई दी, फिर बुझ-सी गई।

हम तेज़ी से बढ़े। कुछ ही दूर पर दो-तीन आदमी खड़े थे-लाइनमैन, गार्ड और एक चौकीदार। उनके चेहरों पर घबराहट नहीं थी; केवल एक थकी हुई तत्परता थी, जैसे वे ऐसे क्षणों के अभ्यस्त हों।

ज़मीन पर वह मज़दूर पड़ा था। उसकी टॉर्च एक ओर उलट गई थी। औज़ार बिखरे हुए थे। पटरियों के पास फिश-प्लेट खुली हुई थी, और उसके पास की मिट्टी उखड़ी हुई थी।

''क्या हुआ?'' मित्र ने पूछा।

गार्ड ने सपाट स्वर में कहा- ''गाड़ी निकल गई। अँधेरा था। शायद पैर फिसल गया।''

''पैर फिसल गया?''

मज़दूर की छाती हल्की-हल्की उठ रही थी। वह अभी जीवित था। आँखें खुली थीं-पर उनमें धुआँ था, जैसे भीतर भी कोई भट्ठी जल रही हो।

मित्र घुटनों के बल बैठ गए - ''तुम ठीक हो? सुनते हो?''

उसने होंठ हिलाए - आवाज़ नहीं निकली।

मैंने पानी माँगा। चौकीदार ने अपनी बोतल से कुछ बूँदें उसके होंठों पर टपकाईं।

कुछ क्षण बाद वह फुसफुसाया- ''जोड़... कस दिया...''

मित्र ने उसकी हथेली पकड़ ली।

''हाँ, कस दिया। तुमने कस दिया।''

वह जैसे आश्वस्त हुआ। फिर धीमे से बोला - ''सुबह... गाड़ी...''

शब्द टूट गए।

> भोर होने से पहले ही खबर फैल गई। प्लेटफ़ॉर्म पर काम करने वाले, कुली, चायवाले, सफ़ाईकर्मी-सब जानते थे कि रात को एक मज़दूर कुचला गया। पर किसी के स्वर में उत्तेजना नहीं थी। यह कोई असाधारण घटना नहीं थी; यह व्यवस्था का स्वाभाविक व्याकरण था।
>
> स्ट्रेचर को रात ही में छोटे-से अस्पताल की ओर भेज दिया गया था। कहा गया - ''देखेंगे।'' फिर धीरे से जोड़ा गया- ''अगर बचा तो।''

एक आदमी ने कहा- ''एम्बुलेंस बुलाएँ?''

दूसरे ने कंधे उचकाए - ''पहले लाइन ठीक है कि नहीं, देख लो।''

गार्ड टॉर्च लेकर फिश-प्लेट के पास गया। उसने कील ठोकी, हथौड़ा मारा-टन्!

''अब ठीक है'', उसने कहा।

हम स्तब्ध खड़े थे।

''अस्पताल?'' मित्र ने फिर पूछा।

''रेलवे का अस्पताल है, पर...'' चौकीदार ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

तभी स्टेशन से दो आदमी स्ट्रेचर लेकर आए। उन्होंने बिना कुछ कहे उसे उठाया। उसकी देह ढीली पड़ चुकी थी। टॉर्च अब भी टिमटिमा रही थी।

हम उनके पीछे-पीछे चले।

प्लेटफ़ॉर्म पर लौटते-लौटते आधी रात हो गई। दो-तीन जिज्ञासु यात्री ठिठककर देखने लगे। किसी ने पूछा- ''क्या हुआ?''

''दुर्घटना,'' गार्ड ने कहा।

''मज़दूर है?''

''हाँ।''

इतना सुनते ही वे आगे बढ़ गए।

स्टेशन मास्टर का कमरा फिर खुला। भीतर रजिस्टर निकाला गया। कलम चलाई गई।

''नाम?''

चौकीदार ने बताया।

''पद?''

''पटरी मज़दूर।''

''घटना का कारण?''

गार्ड ने कहा- ''अँधेरे में असावधानी।''

रजिस्टर में पंक्ति पूरी हो गई।

हम वहीं खड़े रहे।

कुछ देर बाद स्टेशन फिर वैसा ही हो गया। लाल बत्तियाँ झपकने लगीं। घड़ी टिक-टिक करने लगी। दूर कहीं से इंजन की धीमी सीटी की आवाज आई।

भोर होने से पहले ही खबर फैल गई। प्लेटफ़ॉर्म पर

काम करने वाले, कुली, चायवाले, सफ़ाईकर्मी–सब जानते थे कि रात को एक मज़दूर कुचला गया। पर किसी के स्वर में उत्तेजना नहीं थी। यह कोई असाधारण घटना नहीं थी; यह व्यवस्था का स्वाभाविक व्याकरण था।

स्ट्रेचर को रात ही में छोटे–से अस्पताल की ओर भेज दिया गया था। कहा गया – ''देखेंगे।'' फिर धीरे से जोड़ा गया– ''अगर बचा तो।''

हम दोनों भी अस्पताल की ओर गए। छोटा–सा बरामदा, भीतर दो पलंग, एक दवा की अलमारी, एक कंपाउंडर। वहाँ वह पड़ा था–पट्टियाँ बाँधी जा चुकी थीं। चेहरा शांत था, जैसे किसी गहरी थकान के बाद नींद आई हो।

''डॉक्टर?'' मित्र ने पूछा।

''साहब अभी आएँगे,'' कंपाउंडर ने कहा।

''हालत कैसी है?''

''देखिए... चोट गहरी है। बहुत खून गया।''

मित्र ने जेब टटोली। कुछ नोट निकाले। कंपाउंडर की ओर बढ़ाए – जो ज़रूरी हो, करिए।

कंपाउंडर ने हाथ पीछे खींच लिया – सरकारी मामला है। नियम हैं।

हम खड़े रहे। कुछ देर बाद उसने आँखें खोलीं। पहचान की धुँधली–सी रेखा उनमें तैर गई।

मित्र झुककर बोले– ''कैसे हो?''

वह मुस्कुराने की चेष्टा करता हुआ बोला– ''गाड़ी... उतर नहीं गई...''

उसके स्वर में एक अजीब संतोष था।

इतने में डॉक्टर आए। उन्होंने पट्टी देखी, नाड़ी देखी, सिर हिलाया।

''कुछ उम्मीद है?'' मित्र ने पूछा।

डॉक्टर ने अस्पष्ट–सा उत्तर दिया– ''देखते हैं।''

कुछ ही देर में उसकी साँसें अनियमित होने लगीं। वह जैसे कुछ कहना चाहता था। होंठ हिले – ''बच्चा...''

फिर सब शांत हो गया।

कंपाउंडर ने चादर खींच दी।

हम बाहर आ गए। सुबह की हल्की रोशनी फैल रही थी। प्लेटफ़ॉर्म पर पहली पैसेंजर गाड़ी लग चुकी थी। लोग चढ़ रहे थे, उतर रहे थे। चाय की भाप फिर उठ रही थी।

स्टेशन मास्टर के कमरे में रजिस्टर फिर खुला। एक नई पंक्ति जुड़ी

''कर्मचारी–मृत।''

कारण – ''दुर्घटना। असावधानी।''

इतना लिखकर कलम रख दी गई।

किसी ने पूछा– ''लाइन?''

उत्तर मिला – ''सुरक्षित है।''

और सचमुच, कुछ ही देर में एक लंबी एक्सप्रेस आई। समय पर। उसके डिब्बों में बैठे लोग शायद यह भी न जानते थे कि रात उनकी सुविधा के लिए किसने अपनी साँस रोक दी। वे अख़बार पढ़ रहे थे, चाय पी रहे थे, खिड़की से बाहर झाँक रहे थे।

गाड़ी चली गई।

पटरियाँ चमकती रहीं।

हम लौटते हुए उस जगह पर गए जहाँ रात औज़ार बिखरे थे। अब सब समेट लिया गया था। केवल मिट्टी पर हल्का–सा दाग था–जैसे किसी ने जल्दी में कुछ पोंछ दिया हो।

मित्र ने कहा– ''उसका बच्चा?''

मैंने उत्तर दिया – ''शायद बड़ा होकर यही काम करेगा।''

मित्र ने मेरी ओर देखा–उनकी आँखों में क्षोभ था।

व''यवस्था चलती रहेगी,'' मैंने कहा। ''पटरियाँ सीधी हैं।''

उन्होंने धीमे स्वर में कहा– ''सीधी हैं– पर कितनी लाशों पर।''

हम चुप रहे।

सूरज ऊपर उठ आया। स्टेशन फिर पूरी तरह जाग गया। घोषणाएँ होने लगीं। सीटी बजी। पहिए घूमे।

रेल चलती रही।

पटरी सुरक्षित रही।

और एक मज़दूर का जीवन–रजिस्टर की एक पंक्ति में समा गया।

हमने देखा, सुना, सोचा, और अपनी–अपनी दिशा में बढ़ गए।

हिन्दी के प्रति ममता का भाव यदि आपके हृदय में नहीं है तो निर्ममतापूर्वक उसका वध करने में आपको बिंदु मात्र भी पीड़ा और ग्लानि नहीं होगी।

– डॉ नामवर सिंह

- लघुकथा -

- रेखा सक्सेना, भोपाल

ज़रुरतें

''बेटा महेश! मेरी बत्तीसी बनवा दे कुछ भी खाने से मसूँढ़ो में गड़ता है ।''

उन्होने मुँह खोलकर दिखाया. एक भी दाँत उनके पोपले मुख में नहीं था।

पोते मनु ने आश्चर्य से कहा, ''बिना दाँतों के आप कैसे खाते हो दादा जी? ''

वे पोपली हंसी हँसे.... ''जैसे तू बचपन में खाता था, तेरी माँ तुझे रोटी गलाकर नरम करके खिलाती थी।''

''ठीक है बाबूजी, आज मुझे तनख़्वाह मिलेगी। इस हफ्ते आपकी बत्तीसी ज़रूर बनवा दूँगा ।''

सच में उन्हें खाने में बहुत कष्ट होता होगा...

उनके मुख पर खुशी की झलक देख, वह भी खुश हो गया।

''सुनो जी! अगले हफ्ते मनु का जन्म दिन है... कई दिनों से लगा है, वह साइकिल के लिए... उसके सभी दोस्तों के पास साइकिल है, सब चलाते हैं, वह मायूस होकर देखता है। इस बार जन्मदिन पर उसे साइकिल ही दिला देते है।'' नाश्ता लगाती पत्नी बोली ।

वह सोच में पड़ गया, साइकिल या बाबूजी की बत्तीसी, एक ही हो पाएगा...

''शुभा! एक महीना मनु और साइकिल ना चलाए, बाबूजी की बत्तीसी बनवा देते हैं, मैंने उन्हें कह दिया है।''

''आप तो बिना सोचे समझे, योजनाएँ बना लेते हो, बाबूजी एक माह और जैसे खाते हैं, खाते रहते, बच्चे की इच्छा को हम कब तक मारे?''

कमरे में पढ़ रहे मनु को, महसूस हुआ कोई चीज उसके मसूढों में गड़ रही है।

''बेटा, मैं सोच रहा था, बत्तीसी अगले महीने लगवा लेते है, मैं थोड़ा अपने मित्रों से और पता कर लूँ, वैसे भी..... बत्तीसी में झंझट तो रहता ही है, रोज निकालो रोज साफ करो।''

उसने बाबूजी का चेहरा पढ़ने की कोशिश की, कहीँ इन्होंने शुभा की बातें सुन तो नहीं ली... एक अपराध बोध सा महसूस हुआ उसे,.. तभी... भागता हुआ मनु आया

''पापा, मुझे अभी साइकिल नहीं लेनी, देखो.. आज विकी गिर पड़ा साइकिल से, एक्जाम का समय है, मै भी कहीं साइकिल सीखते समय गिर गया तो?.... एक्जाम के बाद ही लूँगा। ... वैसे भी इस महीने दादाजी की बत्तीसी बनवानी है, आपको...'' दादा और पोते की नजरें आपस में मिली, एक दूसरे को तौलती हुई...

वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो सोच रहा था कि, बाबूजी की बात माने या बेटे की?

और उसने दोनों की ही बात नहीं मानी...

पिछले दो माह से उसके जूते के तल्ले घिस चुके थे...

इस माह वह अपने लिए नये जूते लेने की सोच रहा था,वह उसने अगले महीने के लिए टाल दिया... अभी तो एक महीने और चल जायेंगे..... ।

राँग साईड

साफ सुथरी लक- दक यूनीफॉर्म पहने, पीठ पर किताबों से भरा भारी बस्ता उठाए बालक ने सड़क के दूसरी ओर साथ- साथ चल रहे बालक की ओर मुस्करा कर देखा-

''तुम गलत साइड पर चल रहे हो, यह सही साइड है मेरी टीचर बताती है।''

पीठ पर कचरे से बीने हुए कबाड़ की बोरी रखे मैले-कुचेले किसी की उतरन पहने समवयस्क दूसरा बालक कुछ सकुचाते हुए सही साइड पर आ गया और दूसरे बच्चे से कुछ दूरी बनाते साथ-साथ चलने लगा।

पहला बच्चा..- ''तुम स्कूल नहीं जाते क्या?''

दूसरा बच्चा कुछ बोला नहीं, वह आँखों में एक हसरत सी लिए कभी उस बच्चे को देखता और कभी उसकी पीठ पर टंगे उसके रंगबिरंगे स्कूल बैग को। गली का मोड़ आया और जैसे ही दूसरे बच्चे की निगाह कचरे के ढेर में पड़ी पन्नियों पर पड़ी, वह दौड़कर राँग साइड चला गया ।

अनुवाद

मूल मराठी : खरा धर्म
हिंदी अनुवाद : सच्चा धर्म

मराठी **– साने गुरुजी**

खरा तो एकचि धर्म। जगाला प्रेम अर्पावे।।धृ।।

जगी जे दीन अति पतीत। जगी जे दीन पददलित।
तया जाऊन उठवावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।१।।

ज्यांना कोणी ना जगती। सदा जे अंतरी रडती।
तया जाऊन सुखवावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।२।।

समस्ता धीर जो द्यावा।। सुखाचा शब्द बोलावा।
अनाथा साह्य ते द्यावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।३।।

सदा जे आर्त अति विकल। तयांना गांजती सकल।
तया जाउनि हसवावे। जगाला प्रेम अर्पावे।४।।

कुणा न व्यर्थ शिणवावे। कुणा न व्यर्थ हिणवावे।
समस्ता बंधु मानावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।५।।

प्रभूची लेकरे सारी। तयाला सर्व ही प्यारी।
कुणा न तुच्छ लेखावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।६।।

जिथे अंधार औदास्य। जिथे नैराश्य आलस्य।
प्रकाशा तेथ नव न्यावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।७।।

असे जे आपणापाशी। असे जे विल वा विद्या।
सदा ते देतची जावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।८।।

भरावा मोद विश्वात। असावे सौख्य जगतात।
सदा हे ध्येय पूजावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।९।।

असे हे सार धर्माचे। असे हे सार सत्याचे।
परार्था प्राणही द्यावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।१०।।

जयाला धर्म तो प्यारा। जयाला देव तो प्यारा।
तयाने प्रेममय व्हावे। जगाला प्रेम अर्पावे।।११।।

हिंदी **– पं. रामेश्वर दयाल दुबे**

सत्य ही, धर्म बस एक है।विश्व को समर्पित प्रेम हो।

जगत में दीन जन जितने जगत में पददलित जितने
उन्हें ऊपर उठावें हम, जगत् को प्यार देवें हम।

न कोई विश्व में जिनका, सदा मन हो रहा जिनका।
उन्हें सुख शांति देवें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

सहारा दे अनाथों को। सदा धीरज अधीरों को।
मधुर ही बोल बोलें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

सदा जो आर्त व्याकुल हैं, जिन्हें सब ही सताते हैं।
उन्हें जाकर हँसायें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

किसी को कष्ट, किसी को दु:ख क्यों देवें?
सभी को बंधु मानें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

प्रभु-संतान हैं सारे, हैं सभी जन उसे प्यारे।
उन्हें क्यों नीच मानें हम? जगत को प्यार देवें हम।।

जहाँ नैराश्य का तम है, नहीं आलस्य भी कम है,
वहाँ आलोक देवें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

हमारे पास जो कुछ है, मिली विद्या हो या धन हो?
रहें देते उसे ही हम, जगत को प्यार देवें हम।।

जगत में मोद भर जाये, जगत में सौख्य सरसाये।
करें यह ध्येय पूरा हम, जगत को प्यार देवें हम।।

इसी में धर्म सारा है, इसी में सत्य सारा है।
परार्थे प्राण देवें हम, जगत को प्यार देवें हम।।

हमें यदि धर्म प्यारा है, हमें भगवान प्यारा है।
बनें तो प्रेममय ही हम, जगत को प्यार देवें हम।।

कविता

दोहे

वनज कुमार वनज, जयपुर

उतर गई थी गोद से,डर के मारे छाँव ।
रखे पेड़ पर धूप ने,ज्यों ही अपने पाँव ।।

बात कौन सी थी जिसे, सुनकर मेरे पांव।
कभी नहीं फिर ले गए,मुझको उसके गांव।।

जाने कब खाली मुझे ,करना पड़े मकान ।
मैं समेट कर इसलिए , रहता हूँ सामान ।।

किस किस की पूरी करे यहां जुलाहा आस।
हर चरखे को चाहिये,हंसती हुई कपास।।

दिन हो जाता शाम को थककर इतना चूर।
कर लेता है रात की शर्तें सब मंज़ूर।।

नहीं जानता ढो रहा है क्यों मुझे शरीर।
मैं तो कब का मर चुका जिस दिन मरा ज़मीर।।

फैल रहा है आजकल घर घर में ये रोग ।
एड़ी ऊंची कर रहे कद के खातिर लोग ।।

हवा मांगती फिर रही,है जीवन की भीख।
मगर धुंआ तय कर चुका, फांसी की तारीख़।।

छोड़ो ये पैगंबरी बन जाओ इन्सान ।
खुद के भीतर झांक लो खाली पड़ा मकान ।।

आज हवा के साथ में घूम रही थी आग।
वरना यूं जलता नहीं बस्ती का अनुराग।

गिद्ध बाज के साथ में मंडराती है चील
क्या सचमुच हम हो गए लाशों में तब्दील।

बहकाने में शोर का बहुत बड़ा था हाथ
वरना मेरा मौन तो खुश था मेरे साथ।

लिखते लिखते थक गए हैं आंखों के हाथ
ख़त्म नहीं करते मगर आंसू अपनी बात।

हवा मांगती फिर रही है जीवन की भीख
मगर धुंआ तय कर चुका फांसी की तारीख़

वहां उजालों के नहीं, होते कभी बयान।
जहां खिड़कियों से बहस करते रौशनदान।।

देख धूप का आचरण सूरज है हैरान।
सोच रहा है भर दिए, किसने इसके कान।।

तुमने तो बस कह दिया,कल करना अब बात।
रोकूंगा मैं किस तरह, आंसू सारी रात।।

बरगद पनघट पर खड़ा लिखता है इतिहास।
किस किसने किस किस तरह यहां बुझाई प्यास

चंदा छुपना मत कहीं, जब हो आधी रात।
आज गवाही के लिए, रहना मेरे साथ।।

नदिया धीरे चल ज़रा, जाना है उस पार।
बुलवाया है आज तो, उसने पहली बार।।

एक अकेला कर रहा, सबके सारे काम।
सब मिलकर ऐसा करो, वो कर ले आराम।।

मैं भी हूं तेरी तरह यहां किराएदार।
फ़िर क्यों मालिक की तरह करता है व्यवहार।।

जीवन में हारी नहीं, कभी धूप से छाँव।
इधर उधर करती रही केवल अपने पाँव।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को जानो, हिन्दी को पहचानो, हिन्दी में बात कर अपने देश का गौरव बढाओ, अखंड भारत को मजबूत करो और गर्व से कहो हम भारतीय हैं।

वीरांगना महारानी अहिल्याबाई होलकर

धन्य मालवा की माटी से जिसकी हुई सगाई थी।
वीर होलकर वंश कीर्ति कुल वधू अहल्या बाई थी।।
खंडेराव,होलकर के सुत
रानी के श्रृंगार बने।
जीवन धर्म पंथ के साथी बिछड़े दुखद अपार घने।।
पुत्र , पुत्रि, पति हुए दिवंगत
सूखी यौवन बेली थी।
जीवन पथ पर प्रिय जन छूटे रानी सिर्फ अकेली थी।।
दत्तक पुत्र हेतु सरदारों में मिलकर अनुरोध किया।
पुत्र हजारों जनता में हैं रानी ने संबोध किया।।
प्रजा वत्स हैं मेरे ,मेरी कोटि कोटि संतानें है।
जनजन के हित राज्य कोष के अक्षय खुले खजाने हैं।।
राज्य विलय कर पराधीनता मुझको अंगीकार नहीं।
मेरा राज्य स्वतंत्र ,मुझे शिव बिना अन्य स्वीकार नहीं।।
वीरांगना अहल्या हूं ,मालव की माटी पानी हूं।
मेरी नगरी के राजा शिव, मैं उनकी सेनानी हूं।।
सैन्य केंद्र इंदौर बना, संगठित किया महिला सेना।
राज्य घोषणा की अपराध कृत्य दहेज लेना देना।।
सैन्य शहीदों की विधवाओं
को खादी से जोड़ दिया।
नारी महाशक्ति को राष्ट्र सृजन धारा से मोड़ दिया।।
धर्म प्रवण जनता के हित
शिव अर्चन का संधान किया।
माहेश्वर में कोटि-कोटि शिवलिंगों का निर्माण किया।
सोमनाथ मंदिर का जिसके हाथों से निर्माण हुआ।
काशी विश्वनाथ का जीर्णोद्धार
धर्म अभियान हुआ।।
भव्य बने मेरा भारत, मैं शिव की शिवा भवानी हूं।
मेरी नगरी के राजा शिव मैं उनकी सेनानी हूं।।

महाप्राण हिंदी कविता के

डॉ. चंद्रिका प्रसाद दीक्षित, 'ललित'-बांदा

महाप्राण हिंदी कविता के
सूर्यकांत अभिराम
निराला युग वर्चस्व प्रणाम।

संघर्षों में शैशव वीता दग्ध युवा संसार,
संयम में तरुणाई बीती थोड़े दिन का प्यार।
तरुण तरणि को मिला शेष मँझधारों का मँझधार
सागर को भी किंतु पी गए देखा किए तमाम
कालजयी दुर्जेय निराला महाशक्ति के धाम।
निराला युग वर्चस्व प्रणाम।।

यौवन का अल्हड़पन जिसमें संयम भरा पहाड़ था
फौलादी आजादी का स्वर जिसमें रहा दहाड़
तम की काली रातों को पी भोर सिंदूरी बांटता
मधुश्रुतु की आकांक्षाओं का करुणा भरा असाढ था
ज्योति पत्र पर लिखा समर वह युग युग का अविराम।
अरे संघर्षजयी व्यक्तित्व शक्ति पूजा वाले ओ राम।
निराला युग वर्चस्व प्रणाम।।

इंदीवर की कलियों का देखा तुमने रूपांकन
परिमल वाले गीतों का वह बासंती आकर्षण
तुमने कुंतल घन यौवन छवियों का दृश्य निहारा
तुमने हाथों भरे हथौडों से जो रूप उतारा
पर्वत सी कवि की छाती पर टंगी सुबह सी शाम
एक जनपथ के लिए अनाम,
तोड़ती पत्थर जो निष्काम।
निराला युग वर्चस्व प्रणाम।।

कला और कविता का स्वर है बादल राग निराला
महासूर्य का तेज देखकर शोषण का मुंह काला
युग दधीचि की तरह वृत्त का छंद तोड़ने वाला
और देह के अस्थि कलश में अमृत घोलने वाला
प्रलय पुरुष हिंदी कविता के प्रगतिशील परिणाम,
तुम्हारे संकेतों पर कविता करती मजदूरी का काम।
निराला युग वर्चस्व प्रणाम।।

गीत

अपनी सरहद

– डॉ. ज्योति कृष्ण, पुणे

अपनी सरहद पर बजते
बिगुल बाजे जब सुनती है !

वह भी मन ही मन में कोई
ताना- बाना बुनती है !

मिलता नहीं है सबको मौक़ा
देश की रक्षा करने का

मातृभूमि क़िस्मत वालों को
अपना बेटा चुनती है !!

सुनकर ललकार

सुनकर ललकार बढ़े आगे
फिर मन में कोई सवाल नहीं ।
रगों में बहता रक्त ही क्या,
जिसमें आ जाए उबाल नहीं ।।

अपने सर पर कफ़न बाँधकर
वे देश की रक्षा करते हैं ।
जो डरकर पीछे हट जाएँ
वे भारत माँ के लाल नहीं ।।

हिंदी रत्न

सूरदास–मीराबाई और वह रसखान–कबीर ।
भक्ति काल की प्रस्तुत करते मनमोहक तस्वीर ।।

अद्भुत रचनाकार कुमारी सुभद्रा जी चौहान ।
महादेवी और अमृता को भी मिला बहुत सम्मान ।।

अगली कड़ी में वे हैं लिखा जिन्होंने बहुत कमाल ।
जानकी बल्लभ, मैथिली शरण,नेपाली, माखनलाल।

कवियों के इस अनुक्रमांक का यहीं नहीं है अंत ।
दिनकर, प्रसाद हरिऔध और निराला, बच्चन, पंत।।

हमने हिंदुस्तान पढ़ा है

मंदिर में भगवद्गीता और घर में वेद–पुराण पढ़ा है ।
पढ़ी किसी ने हिंदी–अवधी हमने हिंदुस्तान पढ़ा है।।

पढ़ा कबीर पढ़ी मीरा और
सूर–बिहारी–तुलसी भी,
शब्द–शब्द में मिश्री भर दे,
वो अद्भुत रसखान पढ़ा है ।

जिसकी ईंट–ईंट पर लिखी
कथा वीर योद्धाओं की,
बोलो अपने जीवन में
किस–किसने राजस्थान पढ़ा है ?

संस्कृत पढ़ी गणित भी सीखा,
अंग्रेज़ी , इतिहास पढ़ा ।
भारत को गणतंत्र बनाने
वाला संविधान पढ़ा है ।।

किसने 'भारत की खोज' पढ़ी
और पढ़ी है किसने 'मधुशाला'?
हमने सुना है कुछ लोगों ने
गालिब का 'दीवान' पढ़ा है !!

एक इबारत लिखी हुई थी,
मस्जिद और शिवालय पर,
पढ़ा एक ने भोले शंकर,
दूजे ने रहमान पढ़ा है ।।

पढ़ने वाले तो पढ़ते हैं,
सही–सही हर अक्षर को,
जीवन की हर मुश्किल को,
लेकिन हमने 'आसान' पढ़ा है ।।

नीतिज्ञ के लिए यश और धन की कमी नहीं है।
– प्रेमचंद

गज़ल

– प्रशान्त कात्यायन, पुणे

कभी ख़ुशबू

कभी ख़ुशबू, कभी तोहफा, कभी त्योहार लगती हो,
मैं तुमको जब भी देखूँ, क्यूँ नई हर बार लगती हो,

तुम्हें वो चाँद जब भी देखता है, झुलस जाता है,
कि सर से पाँव तक तुम हुस्न का अंबार लगती हो,

तसव्वुर भी तुम्हारा हो, तो मैं मदहोश हो जाऊँ,
मेरे दिल की ज़मीं पर, मय की तुम बौछार लगती हो,

तुम्हें ही देखकर सीखा है मैंने, ये ग़ज़ल कहना,
तुम्हीं जावेद अख़्तर, तुम मुझे गुलज़ार लगती हो,

निगाहों में ये बेचैनी, जताती हो कि ख़ुश हो तुम,
मेरे दिल की तरह तुम भी बड़ी लाचार लगती हो,

दीवानों की बड़ी तादाद में, तुमने चुना मुझको,
शक्ल मासूम है, पर अक्ल से होशियार लगती हो,

हो करती कितने वादे, पर निभाती हो नहीं उनको,
मुझे लड़की नहीं, तुम देश की सरकार लगती हो...

ज़माना है नया

ज़माना है नया, आने लगे, व्हाट्सएप पे मैसेज,
नई दुनिया में इक रिश्ता है ये व्हाट्सएप के मैसेज,

सियासत की हो दिक़्क़त, धर्म की या देश–दुनिया की,
सभी मसलों को सुलझाने लगे व्हाट्सएप के मैसेज,

न कोई दोस्त आया घर मेरे बड्डे पे लेकिन हाँ,
धड़ाधड़ लग गए आने, मिरे व्हाट्सएप पे मैसेज,

वफ़ा के ग्रुप से, एक–एक करके सारे हो गए एग्जिट,
हमी सेंड रीड करते हैं वहाँ व्हाट्सएप के मैसेज,

ये दावा था कि जोड़ेंगे हमें आपस में पर अफ़सोस,
कि अब दंगे कराने लग गए, व्हाट्सएप के मैसेज,

कहा हमने नहीं है शेर ये दीवान–ए–ग़ालिब का,
दिखाने लग गए ग़ालिब का वो व्हाट्सएप पे मैसेज

अदीबो क्या सही में इतना मुश्किल है नया लिखना,
कि मंचों से पढ़े जाने लगे व्हाट्सएप के मैसेज...

भाषा कल्पवृक्ष है। जो उससे आस्थापूर्वक माँगा जाता है, भाषा वह देती है। उससे कुछ माँगा ही न जाए, क्योंकि वह पेड से लटका हुआ नहीं दीख रहा है, तो कल्पवृक्ष भी कुछ नहीं देता ।

– अज्ञेय

जब तक जीना तब तक सीखना, अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है – स्वामी विवेकानंद

''हे समुद्र ! तेरी क्या भाषा है?''
''शाश्वत प्रश्न की भाषा।''
''हे आकाश! तेरे उत्तर की क्या भाषा है?''
''शाश्वत मौन की भाषा।''

–रवींद्रनाथ ठाकुर

दर्पण में आप अपना चेहरा देख सकते हैं,
चरित्र नहीं ।

चिंतन

ज्ञान परम्परा में मूल्य चेतना

– सुरेन्द्र अग्निहोत्री, लखनऊ

भारतीय चिंतन में मूल्य क्या है? वस्तुत: भारतीय परंपरा के अनुसार मूल्य जीवन जीने का वह सिद्धांत है जिससे बहुसंख्यक लोग लाभान्वित हो। भारतीय चिंतन परंपरा में मूल्य दो प्रकार के माने गए हैं – (1) शाश्वत मूल्य और (2) परिवर्तनशील मूल्य। भारतीय ज्ञान परंपरा में शाश्वत मूल्य ऐसे मूल्यों को कहा जाता है जिनकी प्रासंगिकता सर्वकालिक हो, जैसे सभी के सुखी और निरोग होने की कामना (सर्वे भवंतु सुखिन:, सर्वे संतु निरामया), सत्य, अहिंसा परोपकार आदि। परिवर्तनशील मूल्य के अंतर्गत ऐसे मूल्य आते हैं जिनकी प्रासंगिकता समय सापेक्ष होती है। ऐसे मूल्य परिवर्तित होते रहते हैं और समय के साथ-साथ या तो ऐसे मूल्य महत्वहीन हो जाते हैं या इनकी प्रासंगिकता और भूमिका बदल जाती है। ऐसे मूल्य तत्कालीन परिस्थितियों की उपज होते हैं, जैसे घनघोर जंगल में शिक्षा केंद्र गुरुकुल का होना, युद्ध कौशल के लिए धनुर्विद्या में निपुण होना, बहु-विवाह, कृषि कार्यों को जीविका का सबसे उत्तम साधन माना जाना, जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था आदि। भारत में ज्ञान की परंपरा बहुत ही प्राचीन है और इसका आरंभ वेदों से माना जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा एक समृद्ध और विविधतापूर्ण इतिहास रखती है, क्योंकि यह परंपरा हजारों सालों से चली आ रही है। ''भारतीय ज्ञान परंपरा अविराम कालचक्र की तरह है जो निर्झरिणी की भाँति निरंतर गतिशील रहते हुए वर्तमान समय में हमारे समक्ष है।'' 1

भारतीय ज्ञान परम्परा में जीवन मूल्यों के प्रति चेतना बहुआयामी और गहन है। यह परम्परा केवल सैद्धांतिक उपदेश नहीं देती, बल्कि व्यावहारिक जीवन में नैतिकता, सहिष्णुता, प्रेम, सेवा और त्याग को अपनाने की प्रेरणा देती है। आज के भौतिकवादी और प्रतिस्पर्धी युग में जब मानवता अनेक संकटों से जूझ रही है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा के ये जीवन मूल्य मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ के समान हैं। यदि हम इन मूल्यों को अपने जीवन में आत्मसात करें, तो व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर शांति, समृद्धि और संतुलन स्थापित किया जा सकता है। यही भारतीय ज्ञान परम्परा की सार्थकता और वैश्विक महत्ता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध परम्पराओं में से एक है। इसकी जड़ें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जैसे वेदों में निहित हैं। इन ग्रंथों के साथ-साथ उपनिषद, भगवद्गीता, रामायण और महाभारत ने भारतीय समाज को न केवल आध्यात्मिक दृष्टि दी, बल्कि जीवन मूल्यों के प्रति गहरी चेतना भी प्रदान की। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल उद्देश्य मानव को बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर परिष्कृत करना है, जिससे वह स्वयं, समाज और प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जी सके। भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित सामाजिक मूल्यों के द्वारा वर्तमान पीढ़ी एवं शिक्षा प्रणाली में सार्थक रूप से प्रभावी है:। 2

1. धर्म का मूल्य

भारतीय चिंतन में 'धर्म' जीवन का आधार है। यहाँ धर्म का अर्थ संप्रदाय नहीं, बल्कि कर्तव्य, नैतिकता और सत्य के मार्ग पर चलना है। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को स्वधर्म के पालन का उपदेश देते हैं। धर्म व्यक्ति को अनुशासन, संयम और उत्तरदायित्व का बोध कराता है। यह चेतना मनुष्य को अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाती है और समाज में न्याय तथा समरसता स्थापित करती है।

2. सत्य और अहिंसा

'सत्यं वद, धर्मं चर' का उपदेश भारतीय संस्कृति की आत्मा है। सत्य को परम मूल्य माना गया है। उपनिषदों में सत्य को ब्रह्म के समान बताया गया है। आगे चलकर महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को जीवन का सर्वोच्च सिद्धांत मानकर स्वतंत्रता आंदोलन का आधार बनाया। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न पहुँचाने की भावना है। ''अहिंसा परमो धर्म:'', का उद्घोष करके अहिंसा को भारतीय संस्कृति में परम धर्म कहा गया है। यह मूल्य मानवता, करुणा और सह-अस्तित्व की चेतना को विकसित करता है।

3. वसुधैव कुटुम्बकम्

भारतीय ज्ञान परम्परा का एक महान आदर्श हैह्न–'वसुधैव कुटुम्बकम्', अर्थात् पूरी पृथ्वी एक परिवार है। यह विचार उपनिषद में मिलता है। यह मूल्य सीमाओं, जाति, धर्म और भाषा के भेदों से ऊपर उठकर विश्वबंधुत्व की भावना को प्रोत्साहित करता है। आज के वैश्विक युग में यह विचार और भी प्रासंगिक हो गया है, जहाँ मानवता को एकता और सहयोग की आवश्यकता है।

4. पुरुषार्थ चतुष्टय

भारतीय जीवन–दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षह्नइन चार पुरुषार्थों का उल्लेख मिलता है। ये जीवन के संतुलित विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। धर्म जीवन का नैतिक आधार है, अर्थ और काम उसकी भौतिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जबकि मोक्ष आत्मिक मुक्ति का लक्ष्य है। अर्थात आत्मा को समस्त विकारों से मुक्त करना ही मोक्ष है। यह समन्वित दृष्टिकोण बताता है कि भारतीय परम्परा जीवन के सभी आयामों को स्वीकार करती है, परंतु उन्हें नैतिक मर्यादाओं में रखती है।

5. गुरु–शिष्य परम्परा

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान सम्मान दिया गया है। गुरु–शिष्य संबंध केवल ज्ञान के आदान–प्रदान तक सीमित नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण और जीवन मूल्यों के संवर्धन का माध्यम है। प्राचीन गुरुकुलों में शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्या प्राप्ति नहीं, बल्कि सदाचार, सेवा, संयम और आत्मानुशासन का विकास था। यह परम्परा आज भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था की आत्मा है।

6. प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को देव तुल्य माना गया है। नदियों, पर्वतों, वृक्षों और पशुओं की पूजा का भाव पर्यावरण संरक्षण की चेतना को दर्शाता है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का उद्घोष मनुष्य और प्रकृति के अभिन्न संबंध को प्रकट करता है। यह दृष्टिकोण आज के पर्यावरण संकट के समय अत्यंत प्रासंगिक है। भारतीय ज्ञान परम्परा हमें सिखाती है कि प्रकृति का दोहन नहीं, संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। हमारे देश के वैदिक ऋषियों ने ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'', अर्थात सब कुछ उस परमेश्वर ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, का उद्घोष करके कण–कण में ईश्वरीय चेतना को मान्यता दी है। यह मान्यता भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की उदारता का द्योतक भी है।

7. समता और करुणा

भारतीय संत परम्पराह्नजैसे कबीर, तुलसीदास, नानक आदिह्नने समाज में समता और प्रेम का संदेश दिया। उन्होंने जाति–पांति और ऊँच–नीच का विरोध किया तथा मानवता को सर्वोपरि माना। करुणा और दया को ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताया गया। यह चेतना सामाजिक सद्भाव और समरसता की आधारशिला है। मनुष्यता का पोषण ही भारतीय चिंतन की मुख्य विशेषता रही है।

8. आत्मचिंतन और आत्म विकास

भारतीय दर्शन आत्मा की खोज को जीवन का परम लक्ष्य मानता है। 'आत्मानं विद्धि' का संदेश आत्मचिंतन और आत्म विकास की प्रेरणा देता है। भारतीय चिंतन की पराकाष्ठा अद्वैत वेदांत की यह मान्यता कि ''जीवो ब्रह्मैव ना पर:'', अर्थात जीव परमेश्व (ब्रह्म) ही है, भारतीय ज्ञान परंपरा की शाश्वत विभूति है। यह एक ऐसी विभूति है, जो मनुष्य को अपने मौलिक स्वरूप को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रेरित करती रहती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में योग, ध्यान और साधना के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर के विकारों को दूर कर शांति और संतुलन प्राप्त करता है। यह आंतरिक चेतना जीवन मूल्यों को स्थायी बनाकर जीवन की सार्थकता को शाश्वत बना देती है।

संदर्भ

1–भारतीय ज्ञान परम्परा और हिंदी साहित्य–डॉ ममता गोयल, कुमारी आरती

2–भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित सामाजिक मूल्य: एक अध्ययन–ममता त्रिपाठी

5 सितंबर शिक्षक दिन

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का जन्मदिन, शिक्षकदिन के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर सभी गुरुजनों, शिक्षकों, मार्गदर्शकों को विनम्र प्रणाम।

गणपती

गजमुख सनमुख होत है, विघन विमुख व्है जात।
ज्यों पग परत प्रयाग–मग पाप पहार विलात।

श्रीगणेश हिन्दू समाज के लोकप्रिय देवता हैं। वे ज्ञान मूर्ति, शिव के पुत्र, स्वयं बुद्धि के प्रतीक तथा भक्तों को ऋद्धि–सिद्धि का दान देने वाले हैं। गणपत्यथर्वशीर्ष के अनुसार श्री गणपति परब्रह्म की ज्ञानमयी एवं वाङ्मयी शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वाक् या नाद आकाश का गुण है अतः गणेश आकाशतत्व के प्रतिनिधि हैं। पंचतत्व से बने इस शरीर में गणेश पृथ्वी तत्व के अधिष्ठाता भी कहे जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार कृष्ण ने स्वयं शिव–पुत्र गणेश का रूप ग्रहण किया था। अत: गणेश वस्तुत: विष्णु स्वरूप ही हैं।

भगवान गणेश में समाहित गुणों के अनुरूप ही उनकी वेषभूषा तथा परिवेश की प्रतीकात्मक कल्पना की गई है। गणेश समस्त विषयों को बुद्धि से प्रकाशित करने वाले है। आपका शब्द ब्रह्ममय रुप ही आपका सुन्दर वेष है। स्मृति शरीर के विभिन्न अंग हैं। 18 पुराण तथा शब्दों के सुन्दर आपके आभूषण हैं। ज्ञान–युक्त सुन्दर सुभाषित, काव्य, नाटक आदि आपकी मेखला की रुनझुन करने वाली क्षुद्र घंटि हैं। षड्दर्शन आपकी भुजाएं हैं। अनेक मत–मतांतर आपके विविध आयुध हैं। गणेश जी प्रधान रुप से 10 आयुध धारण करते हैं। ये वज्र, शी, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशुल, पद्म और चक्र हैं। जो विघ्नों को काटकर नष्ट करने वाले हैं। वे तर्क रुप परशु, नीतिभेद रुपी अंकुश, तथा बाधाओं को नाश कर सफलता का मार्ग प्रशस्त करने वाला पाश धारण करते हैं। उनका मोदक वेदान्त के महारस का प्रतीक है। संत ज्ञानेश्वर ने उनके खण्डित एकदन्त को बौद्ध धर्म का संकेत माना है। उनका अभय हस्त धर्म की प्रतिष्ठा का द्योतक है तथा उनकी लम्बी सूंड विमल विवेक का संकेत करती है। उनका गजरूप परमेश्वर तथा महिमा के धनी ऐरावत का प्रतीक है। अतिविशाल होने पर भी अहिंसक तथा विनम्र है। बाधाओं में भी जो अडिग रहकर मानसिक सन्तुलन को बनाये रखता है। मूषक किसी वस्तु को खंड–खंडकर विश्लेषित कर देता है अत: यह वस्तु–स्वरूप को विश्लेषित करने वाली बुद्धि का प्रतीक है।

संत ज्ञानेश्वर के अनुसार भगवान गणाध्यक्ष ॐकार के स्वरूप हैं। उनके चरण युगल 'अकार' का, विशाल उदर 'उ' कार का तथा उनके मस्तक के चारों ओर विकीर्ण होने वाला प्रभामंडल 'म' कार का द्योतक हैं। यदि हम ध्यान से उनके श्री विग्रह को देखें तो लगेगा कि उनका वहि रंग रूप ॐकार का प्रतीक है।

श्री गणेश के अनेक विग्रह प्राप्त होते हैं। कहीं वे चतुर्भुज है, कहीं द्विभुज, कहीं षोडषभुज कहीं अष्टादश भुज तथा कहीं षड्भुज हैं। हेरम्ब गणपति, सिंह पर स्थित तथा पाँच मुख वाले कहे जाते हैं।

गणपति शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में आया है। गणानां त्वां गणपतिं हवामहे । गण शब्द का अर्थ है जन या राष्ट्र। इस प्रकार गणेश गण देवता के प्रतीक हैं। सामान्यत: विद्वान गणेश को कृषि–संस्कृति का देवता मानते हैं जिनका हर शुभ कार्य में पूजन होता है।

गणपति की ऋद्धि–सिद्धि दो पत्नियाँ तथा क्षेम व लाभ दो पुत्र हैं। इनका चित्रण चित्रों तथा मूर्तियों में होता है। गणपति परिवार के ये सारे नाम देश और समाज की मंगल कामना के प्रतीक हैं।

वर्तमान युग में चारों पुरुषार्थों में से केवल 'अर्थ' की प्रभुसत्ता ही शेष रह गई है। हमारा समाज भौतिक समृद्धि को ही अत्याधिक महत्व दे रहा है। परन्तु यह भौतिक समृद्धि भी श्रम साध्य होने पर ही मंगलकारिणी हो सकती है। ''जहां सुमति तहं सम्पत्ति नाना'' सम्पत्ति तथा समृद्धि के साथ सुमति का संयोग अनिवार्य है। गणपति सुमति देकर ही हमारे श्रम को मंगलमय बनाते हैं।

पुस्तक चर्चा

अविराम श्याम

(एक विस्मृत क्रांतिकारी की कथा) (नाटक)

लेखक. डॉ. किशोर सिन्हा **समीक्षक – विश्वमोहन, ग्रेटर नोएडा**

किशोर सिन्हा जी की नाट्य कृति 'अविराम श्याम' एक विस्मृत क्रांतिकारी की कथा का पुनीत पाठ है। यह न मात्र हमारी महान विरासत को सहेजता है, प्रत्युत पाठकों के उर को संवेदना के एक अविराम प्रवाह से तर करता है। हम बार–बार इस बात को दुहराते हैं कि वे पीढ़ियाँ बड़ी अभागी होती हैं, जिनकी कोई विरासत नहीं होती, जिनका कोई महान इतिहास नहीं होता! किंतु, उससे भी बड़ी–अभागी पीढ़ियाँ तो वे होती हैं, जो अपने गौरवमय अतीत को विस्मृत कर देती हैं। तवारीखें उन्हें कभी भी माफ़ नहीं करती और अपनी अस्मिता की तलाश में एक–न–एक दिन वे भटकने को बेबस हो जाती हैं। हमें याद है कि भीष्म साहनी की पुस्तक 'तमस' पर दूरदर्शन ने एक धारावाहिक बनाया था। उसके दृश्यपट पर आरंभ में ही एक पंक्ति उभरती थी, 'वे जो इतिहास को भूल जाते हैं, इसे दुहराने को अभिशप्त हैं।' किशोर जी की इस कृति में पीढ़ियों को उस अभिशाप से मुक्त कराने की छटपटाहट दिख रही है। विशेषकर अपने उदात्त संस्कारों की लीक से भटकी आज की तथाकथित जेन–जी पीढ़ी को अपने अतीत के आलोक से भविष्य के पथ को प्रकाशित कर आगे बढ़ने की दिशा में इस तरह की कृतियाँ मील का पत्थर होने की क्षमता रखती हैं।

नाटक की दृश्य–व्यवस्था का श्री गणेश दिन के उन्मेष से होता है। दादा और पोते की बतकही के मीठेपन से कथ्य अपनी चित्रात्मकता के साथ उभरना शुरू होता है। दोनों की वेश–भूषा उनके पीढ़ीगत परिवेश और मूल्यों का गणवेश है सत्तर साल के दद्दु कुर्ते–पैजामे में कंधे पर गमछा डाले और चौदह–पंद्रह साल का किशोर पोता, रमन अपने जींस, टी–शर्ट में कंधे पर एक बैग डाले और टी–शर्ट में चश्मा खोंसे! यही से नाटककार पाठकों को अपने पाश में बाँधता, अपनी गलबहियाँ में लेकर अपनी नाट्य–यात्रा की रोचकता में प्रवेश कर जाता है। दद्दु और रमन की बातचीत से इतिहास जगह–जगह झाँकता नज़र आता है। रेलगाड़ी से उतरकर बस की सवारी, फिर पैदल। दादा–पोते धिपते घाम में 'बिन्द' गाँव पहुँचते हैं। यह महान स्वतंत्रता सेनानी, 1937 से 1952 तक बिहार असेम्बली के सदस्य और समाजसेवी श्याम नारायण सिंह का गाँव है। उनकी आदमकद प्रतिमा एक जर्जर से विद्यालय के पास खड़ी, मानो अपने ज़माने की गवाही दे रही है। इस स्कूल की सत्रह एकड़ ज़मीन श्याम बाबु की दान की हुई है। विद्यालय के भवन की जर्जर हालत अपनी विरासत के प्रति हमारी दृष्टि की दुर्दशा की जीती–जागती तस्वीर है। वहीं भेंटा जाते हैं प्रकाश बाबु – एक अवकाश प्राप्त डाक बाबु। श्याम बाबु के नाम पर जारी डाक टिकट को अपनी स्मृतियों में सहजते उनके मुख से फूट पड़ता है– 'यह डाक टिकट एक चेहरे का नहीं था, एक विचार का था, एक आन्दोलन का था ये डाक टिकट एक आदमी का नहीं एक युग का था।'

नाटककार ने बड़ी कुशलता से इस नाटक में आद्योपांत करुणा की अजस्त्र धार बहायी है, जिसमें पाठक अनायास डूबते–उतराते रहता है। सही बात है, श्याम बाबु जैसे लोग इतिहास की किताबों के लिए नहीं जीते, वे लोगों के लिए जीते हैं। यह भी उतना ही सही है कि कभी–कभी इतिहास देर से आता है, पर ख़ाली हाथ नहीं आता! किशोर जी की इस कृति ने भी अपने पाठक–दर्शक को ख़ाली हाथ नहीं रहने दिया है।

फ़्लैश–बैक के साथ दृश्यान्तर होता है। श्याम बाबु की उपस्थिति के साथ नाटक आगे बढ़ता है। श्याम बाबु के पिता रामप्रसाद बाबु की यह ताक़ीद ह्व 'बेटा श्याम, ये जो मेरी ज़मींदारी है न, उसका अर्थ विलासिता नहीं, कर्त्तव्य है' – आज के नवधनिक सियासतदानों के लिए एक कड़वी घूँट है। श्याम बाबु का उस ज़माने का दर्शन 'जिस देश की बेटियाँ शिक्षित नहीं, वह देश आज़ाद नहीं हो सकता' आज के हिन्दुस्तान का भी उतना ही बड़ा सच है – 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ!' बीच–बीच में सरल और सुबोध कोरस नाटक को सरस गति देते हैं। दिन के निकलने से शुरुआत होने वाली कहानी का अवसान प्रकाश के धीरे–धीरे बुझने फिर सूर्यास्त दिखायी देने की प्रकाश–व्यवस्था से होना नाटककार की कल्पनाशीलता, रचनात्मकता और चित्रात्मकता के उत्कर्ष को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकाश–व्यवस्था में दद्दु फ़्लैश–बैक से वापस रमन के पास लौटते हैं। प्रभाव इतना

गहरा है कि पाठक और दर्शक अभी भी वहीं अपनी संवेदना के सरगम में अपने दृष्टि-बोध के पाश में झूलता खड़ा है। वह अपनी उस अविराम अवस्था को प्राप्त हो गया है, जो नाटककार की संवेदना ने उसके मन पर छाप दिया है। कहन का शिल्प भी अद्भुत है। दादाजी पोते को बताते हैं कि यह कहानी उन्हें उनके पिताजी अर्थात पोते के परदादा ने सुनायी थी। अपनी महान विरासत के मूल्यों और संस्कारों के संचरण की इस प्रक्रिया को अपनी कहानी के शिल्प में गढ़ने और नाटक के रूप में आज की पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करने का यह महायज्ञ इस पूरी कृति को सोद्देश्यता के श्रृंगार से सुसज्जित करता है:

''हम मानवता के पहरेदार हैं
हम जाग रहे हैं
हम मानवता के पहरेदार हैं
हम जाग रहे हैं...''

नाटक के संवाद अत्यन्त प्रभावशाली हैं। भरसक, कहीं-कहीं तो कालजयी हैं। बानगी देखिए – 'धर्म अगर इंसानियत से बड़ा हुआ तो ईश्वर भी रोएगा', 'वोट नहीं, संकल्प दो', 'जहाँ शरीर क़ैद होता है, वहीं आत्मा का विस्तार होता है। इतिहास के सबसे उजले अध्याय अक्सर जेल की कोठरियों में लिखे जाते हैं', 'जब विचार हथियार बन जाए और जनता ढाल, तब इतिहास की दिशा बदलती है', आज़ादी बाहर नहीं होती, भीतर होती है', 'समय बहुत कुछ छीन लेता है, पर कुछ नाम ऐसे होते हैं जो समय को ही बदल देते हैं', 'जो आज पीछे हटा, समझो वह पीढ़ियों तक झुका रहेगा', 'क्रान्ति केवल टकराव नहीं, साहचर्य भी है। जहाँ विचार मिलते हैं, वहाँ इतिहास की रगों में रक्त तेज़ी से बहने लगता है', तुम्हारे साहस में करुणा भी है', और अंत में संवेदना का गढ़ियापन शब्दों में उतरता देखिए, 'आज कोई माँ हिन्दू नहीं, कोई माँ मुसलमान नहीं, सबकी कोख डर से थर-थर काँप रही है, बाबू!'

किशोर जी साहित्यकार हैं, लेखक हैं, नाटककार हैं, अभिनेता हैं, नाट्य निर्देशक हैं, कवि हैं, मीडिया-मैन हैं, संगीतकार हैं और फ़िल्मकार हैं। ज़ाहिर है, जब वह कुछ रचते हैं, उनके व्यक्तित्व में बसते ये सारे किरदार एक साथ मिलकर उन्हें अपना आवेग देने लगते हैं। स्वाभाविक है कि पाठक-दर्शक का सहज संबंध उनके पात्रों के अंतर्मन से जुड़ जाता है। नाटककार की कल्पनाजीविता नाटक के चरित्र में भाव, विचार, संवेदना और अनुभूतियों के बीज छींटते हैं, जो समकालीन परिदृश्य को पूरी तरह सहेज लेता है। चरित्र गतिशील हैं और संघर्षशील भी। भाषा सहज है, संप्रेषणीय है, भावानुरूप है, पत्रानुकूल है, चित्रात्मक है और गतिशील है। यह पाठक के अंतर्मन में पात्र की जीवन्त छवि को खड़ा कर देती है। गठा शिल्प और अनूठी संवाद शैली नाटक के प्राण हैं। संवादों में कसाव है, तारतम्यता है और साथ ही पात्र और परिवेश की स्पष्टता है।

शीर्षक, 'अविराम श्याम' में रोचकता का तत्व है और एक चुंबकीय आकर्षण है जो पाठकों के मन को बाँधता है। कहने को है तो नाटक लेकिन कृत्रिम नाटकीयता से कोसों दूर। सब कुछ खाँटी स्वाभाविक, सहज, सरल और अविराम! 'अविराम श्याम'!

(पृष्ठ क्र. 32 से आगे...)

गुरु शिष्य विशिष्ट संबन्ध

भतीजी वंदना ने स्मरण पर्व में साहित्यकारों को आमंत्रित करने के लिए कार्ड पर पते लिखे थे, नहीं मालुम था कि उन्हीं पतों पर बहुत शीघ्र ही शोक सूचना भेजनी पड़ेगी। उनकी मृत्यु पर 'आज' समाचार पत्र ने लिखा – ''गुरु की पुण्यतिथि पर शिष्य की आत्मांजलि'':

''जीवन भर गुरु के चरणों में साहित्य साधना करने वाले सच्चे शिष्य ने आखरी सांस भी गुरु को उनकी प्रथम पुण्य तिथि पर श्रद्धांजलि स्वरूप समर्पित करके भारतीय संस्कृति की प्रतीक गुरु-शिष्य परंपरा को नयी शक्ति दी। ऐसे महान गुरु थे आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम' और उनके महान शिष्य थे: 'डॉ प्रेम नारायण शुक्ल'.... डॉ शुक्ल का नाम आते ही भारतीय संस्कृति की वह गुरु –शिष्य परम्परा आँखों के सामने नाच जाती है, जो अब धीरे धीरे दुर्लभ होती जा रही है । भारतीय मनीषा गुरु का स्थान भगवान से भी ऊपर रखती है, डॉ शुक्ल ने अपने गुरु पंडित मुंशीराम शर्मा 'सोम' के लिए अपने पूरे जीवन जिस समर्पण और निष्ठा का परिचय दिया; वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती है ।'' ..... 'आज' (समाचार पत्र), कानपुर, 13/1/1991; पृष्ठ, 2)

इस संस्मरण के माध्यम से गुरु-शिष्य परंपरा को शिखर तक पहुंचाने वाले परम पूजनीय विभूतियों को मैं अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ ।

व्यंग्य

हिंदी के हमदम

– सुभाष काबरा, मुंबई

सुबह डोअरबेल बजने पर दरवाजा खोला तो कामवाली बाई थी।मराठीभाषी थी पर तब तक मुझसे हिंदी में बात करती रही जब तक पत्नी ने आ कर दखल नहीं दिया। पत्नी का यह हिंदी विरोध मुझे अच्छा नहीं लगा और मैं कामथ साहब के रेस्टोरेंट में इडली खाने चला गया। उन्होंने खड़े हो कर कुशल क्षेम पूछी और इडली आने तक हिंदी में बतियाते रहे।बाहर निकला तो एक अंग्रेज मिला। उसने भी हिंदी में ही पूछा कि डालमिया कालेज किडर है? मैंने बता दिया बल्कि गेट तक छोड़ कर भी आया क्योंकि बंदा हिंदी में बोल रहा था। लेकिन वहीं एक हिंदी के हमदम मिल गये। मैं मुस्कुराया तो बोले इस संकट के समय भी मुस्कुरा रहे हो? लानत है तुम पर। मैंने पूछा कैसा संकट? और किस पर है? तो बोले कि अपनी हिंदी संकट में है। मैंने कहा हिंदी के टाइपिस्ट मिलते नहीं, लेखक उनसे भी ज्यादा व्यस्त हैं, किताबें रोज छप रही हैं,उनके विमोचन रोज हो रहे हैं, अखबार छप रहे हैं,नेट पर हिंदी का वर्चस्व बढ़ रहा है, व्यापार के लिए विदेशी हिंदी सीख रहे हैं और आप कह रहे हैं कि हिंदी संकट में है? वे नाराज़ हो गये। बोले, तुम्हें कुछ पता नहीं है। देश में अंग्रेजी के पिछलग्गू और हिंदी के विरोधी रोज बढ़ रहे हैं। मैंने कहा विरोध तो इस देश में राम, कृष्ण, सीता और दुर्गा को भी हुआ था तो इनका वजूद मिट गया क्या? हर बार ये और भी ज्यादा मजबूत हो कर सामने आए। यही हाल अपनी हिंदी का भी है। आंकड़े बताते हैं कि हिंदी की गति में गिरावट नहीं आई है। बाजार, विज्ञापन और मनोरंजन में हिंदी का महत्व बढ़ रहा है। वे चिढ़ गये और बोले मुझसे तर्क मत करो। मैं दुखी भी हूं और देश में हिंदी की स्थिति को लेकर चिंतित भी हूं। मैंने कहा और विदेशों में जो हिंदी का प्रचार, प्रसार, विस्तार और महत्व बढ़ा है उसका क्या? वे बोले ये तो बाजार पर छाने की कोशिश है लेकिन हिंदी की आत्मा तो मर रही है। देखना,एक दिन सारी भाषाएं मिल कर हिंदी को निगल जाएंगी। मैं देश भर में निरन्तर यात्राएं करता रहता हूं। विदेश में भी कई जगह गया हूं। दुभाषियों की सुविधा भी देखी है। इसकी उन्हें जाता हुआ देखता रहा।

बचपन में गुरुजी पढ़ाते थे कि मातृभाषा मां होती है और बाकी भाषाएं मौसियां। हम भारतीय खुशनसीब हैं कि हमारे देश में इतनी सारी मौसियां हैं। ये सब मिल जुल कर रहें तो कोई विदेशी भाषा हमारी सभ्यता पर प्रहार नहीं कर सकती। लेखक और साहित्यकार यदि अपने कुछ अलिखित पृष्ठ समाज और जनता को सौंप दें तो उन पर भावों का सुन्दर सृजन हो सकता है। हिंदी के कुछ तथाकथित ठेकेदारों की सोच समझ से परे है। एक प्राचीन सर्वमान्य सरल भाषा पर इतना शक करने लगते हैं मानो हिंदी से ज्यादा अपने पांडित्य की चिंता में हों। हिंदी कोई बुलबुला नहीं है कि कोई पिन मार देगा और ये फूट जाएगा।

हिंदी ही नहीं भारत की सारी सरल भाषाएं और बोलियां भारतवासियों की विरासत की वो नदियां हैं जिन्हें भारतवासी सदियों से संभालते रहे हैं और संभालते रहेंगे। एक आकलन तो ये भी कहता है कि हिंदी जैसे जैसे सरल हुई है, वैसे वैसे ज्यादा लोकप्रिय हुई है। युवा पीढ़ी भी इसे अपनाती हुई चल रही है तथा इसमें आत्मीयता महसूस करती है। फिल्मों ने हिंदी को सदा जन जन तक पहुंचाया है और गीतों तथा सांस्कृतिक व धार्मिक आयोजनों ने हिंदी को भारत के माथे की बिंदी बना कर रखा है। आज 35 से अधिक देशों से भारत का अरबों रुपए का व्यापार है और वे व्यापारी भी जानते हैं कि भारतियों के मन और जीवन में प्रवेश का एक बेहतरीन रास्ता हिंदी से हो कर ही गुजरता है। हिंदी के सारे हमदम हिंदी के सहज सरल विस्तार में बाधा न बनें और पहली भाषा के रूप में हिन्दी का सम्मान करते रहें तो ये उनकी कृपा ही मानी जाएगी।

इंद्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से ज्ञान श्रेष्ठतर है और ज्ञान से परात्पर परमात्मा श्रेष्ठ है।
– वेदव्यास

14 सितम्बर – हिन्दी दिवस

सुनी राष्ट्र भाषा की जब से

सुनी राष्ट्रभाषा की जब से, भव्य मनोहर तान ।
मिटी मोह माया की निद्रा, गए रूप पहचान ।
छिपी छुरी नीचों के छल में
देख दम्भ दुष्टों के दल में
बढ़ आगे हो सजग, मेंट तू, क्षण में नाम निशान
चूम चरण मत चोरों के तू,
गले लिपट मत गोरों के तू,
झटक पटक झंझट को झटपट झोंक भाड़ में मान
खलदल बल दलदल में धसका
गा गौरव–गरिमा गुण यश का
क्या किसका गर तू, उकसाता, अपना प्राण महान
आप आप कर अब न अपर को
बना बाप मत वंचक नर को
अगर उतरना पार चाहता दिखा शक्ति बलवान ।
मिटी मोह माया की निद्रा, गए रूप पहचान।
सुनी राष्ट्रभाषा की जब से, भव्य मनोहर तान ।

– महाप्राण निराला

भ्रमर का गुंजार वह भी

भ्रमर का गुंजार वह भी स्वाधीन
पक्षियों का कलरव–वह भी स्वाधीन
उदय अस्त दिनकर का–
सब है स्वाधीन
बहती है समीर।
पुष्प के शून्य उर में–लेती स्वाधीन साँस
पाती है सुरभि, स्वाधीन गति
आवर्तन–परिवर्तन–नर्तन सुख कीर्तन में
विपुल उल्लासमय–विश्व के क्षण–क्षण में
भूधर महान और क्षुद्र कण–कण में
एक स्वाधीनता का गूँजता है विपुल हर्ष।
भ्रमर का गुंजार वह भी स्वाधीन
पक्षियों का कलरव–वह भी स्वाधीन

– महाप्राण निराला

पंजीकरण क्र. [illegible]

21 जून रविवार को लखनऊ के कवि अवधी हरि की समिति कार्यालय में उपस्थिति और काव्य चर्चा (कुछ क्षण चित्र)

PERIODICAL POST

प्रेषक :
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिंदी भवन, 1439, शुक्रवार पेठ,
बाजीराव रोड, शेवडे गली,
पुणे 411 002 (महाराष्ट्र)
दूरध्वनि : 020-24453159, मोबा. : 9421324396
Email : mrpapune2@gmail.com

प्रति,
श्री.